मार्च 2026

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

# अखण्ड ज्योति

वर्ष 90 | अंक-3 | प्रति - ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक

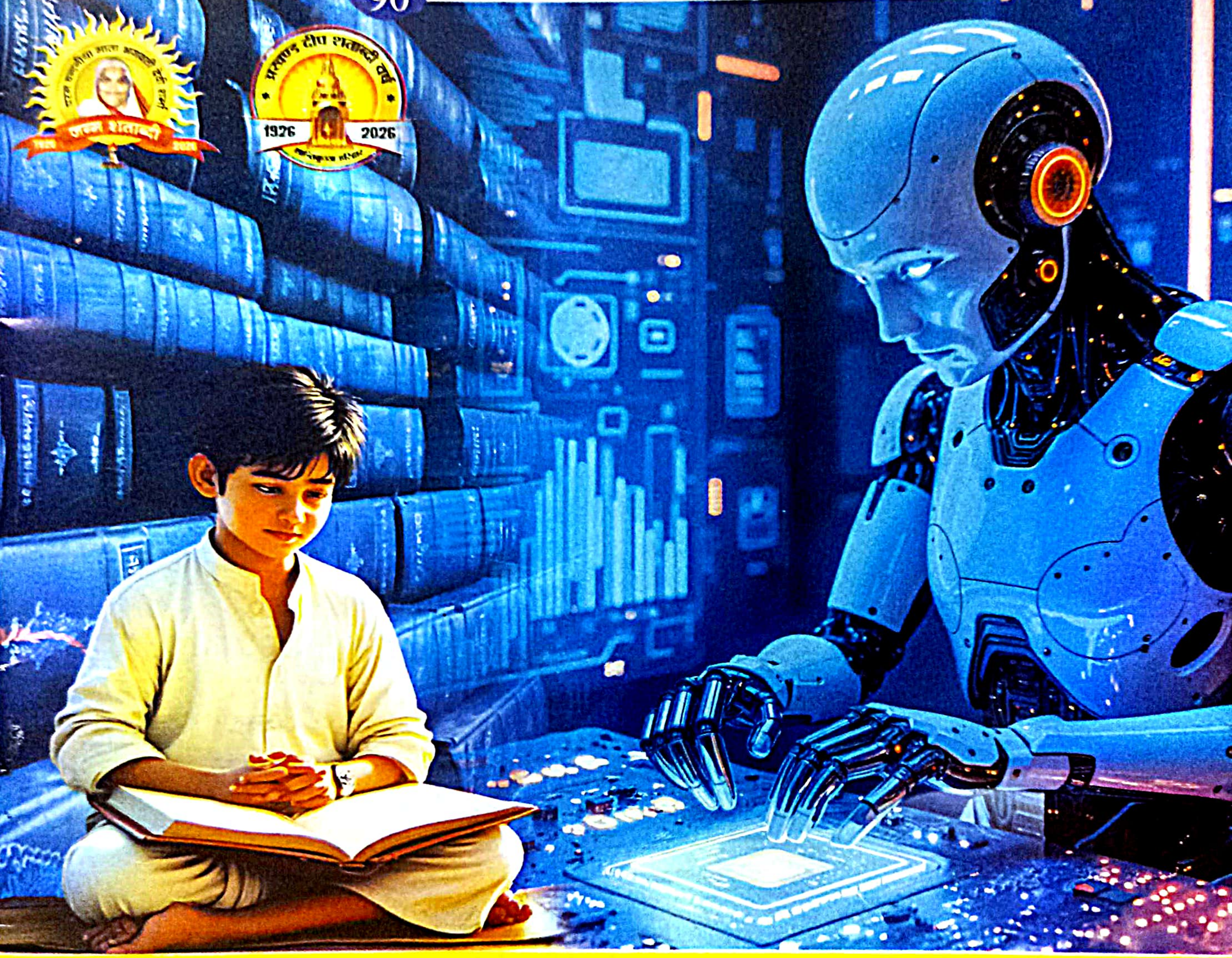


5 ▶ कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) एवं शिक्षा
20 ▶ वेदों में नारी का वैभव
40 ▶ विकृत दृष्टिकोण ही परेशानियों का कारण
60 ▶ नैतिकता का आत्मानुशासन

# 75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति

## सर्वत्र अपना ही प्राण बिखरा पडा है

जब हम आत्मवादी बनते हैं तो स्वभावतः भौतिकवाद को केवल उतना ही महत्त्व देना होता है, जितना कि वह अनिवार्यतः आवश्यक है। शरीर की क्षुधाएँ बुझाने के लिए भोजन कमाने, कुटुंब पोषण की वास्तविक आवश्यकताओं के लिए सीमित धन कमाने की इच्छा हो तो उसे ईमानदारी से कमाया जा सकता है। शेखी-खोरी और बड़प्पन की कामना से हम बहुत-सी बेकार की जरूरतें–फैशन, अपव्यय, उत्सव आदि के खरचीले भार अपने सिर पर ओढ़ लेते हैं। वजन को बढ़ाते चलना और उसको उठाने के लिए धर्म और जीवन को बलिदान करते चलना, आज की यही जीवनचर्या है। यदि सादा जीवन बिताया जाए, अपने अपरिग्रही पूर्वजों की भाँति आवश्यकताओं को सीमित रखा जाए तो भौतिक आकर्षण के लोभ से सहज ही बचा जा सकता है। तब आत्मकल्याण के लिए कुछ सोचने और करने का अवकाश मिल सकता है। इसलिए आवश्यकताओं को कम करना और उच्च विचारों को हृदयंगम करना ही एकमात्र वह उपाय रह जाता है, जिसके सहारे हम आत्मकल्याण की ओर चल सकते हैं। 'सादा जीवन और उच्च विचार' यह आत्मवादी की प्रथम साधना है। इस साधना को अपनाए बिना कोई भी व्यक्ति आत्मकल्याण की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। वस्तुओं की अपेक्षा गुण का मूल्य एवं सम्मान जब समझ में आने लगे तब समझना चाहिए कि यह आत्मवाद का प्रकटीकरण हो रहा है।

(अखण्ड ज्योति, मार्च 1951)

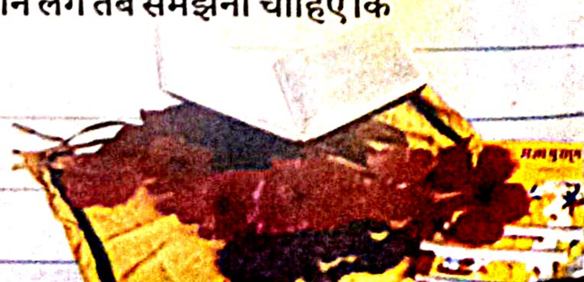

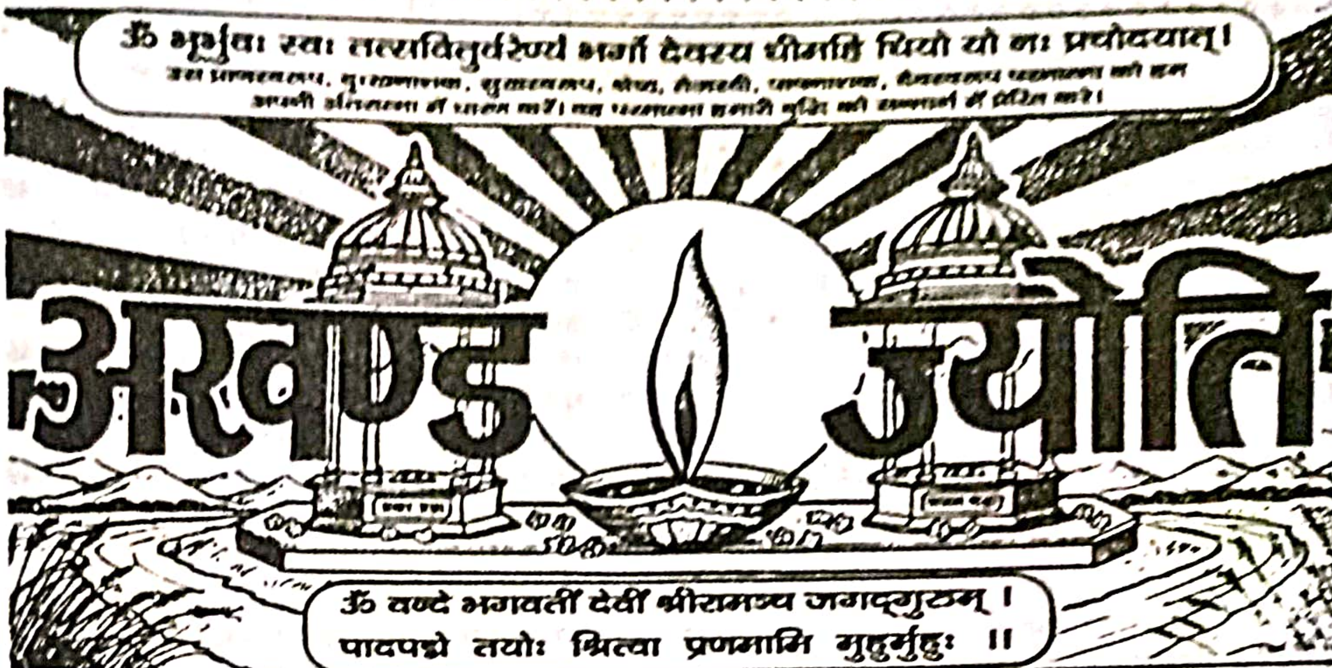


संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी के सामने मथुरा-वृंदावन रोड
जयसिंहपुरा, मथुरा ( 281 003 )
दूरभाष नं० ( 0565 ) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036,
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
व्हाट्सएप नं. 9927086290 ( केवल मैसेज करें )

| | | |
|---|---|---|
| वर्ष | : | 90 |
| अंक | : | 03 |
| मार्च | : | 2026 |
| फाल्गुन-चैत्र | : | 2082-83 |
| प्रकाशन तिथि | : | 01.02.2026 |

**वार्षिक चंदा**

| | | |
|---|---|---|
| भारत में सामान्य डाक से | : | 300/- |
| विदेश में | : | 2800/- |

आजीवन ( बीसवर्षीय )

| | | |
|---|---|---|
| भारत में सामान्य डाक से | : | 6000/- |

# चांद्रायण-साधना

(क्रमशः)

चांद्रायण-साधना—गायत्री-साधना से मिलकर अधिक प्रभावी और प्रकाशित हो उठी। परमपूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के मार्गदर्शन एवं संरक्षण में ये विशिष्ट साधना शिविर आयोजित हुए। गायत्रीतीर्थ, शांतिकुंज में देश-विदेश का साधक समुदाय इसके लिए प्रेरित व उत्साहित हुआ। वर्षानुवर्ष गायत्री-साधना कर रहे परिजनों में इसके लिए विशेष उल्लास था। प्रत्येक चंद्रमास में पूर्णिमा-से-पूर्णिमा तक संपन्न होने वाली यह साधना स्वाभाविक रूप से एकमासीय थी।

युगऋषि गुरुदेव ने अपनी विशिष्ट आध्यात्मिक प्रक्रियाओं से चंद्रमा के सोम या रयि का प्रयोग चांद्रायण-साधना के द्वारा एवं सूर्य की अग्नि या प्राण को गायत्री-साधना के प्रयोग से, साधकों की इड़ा-पिंगला नाड़ी के ऊर्जा-प्रवाह को संतुलित-संवर्धित करने में किया। फिर इस संतुलन से सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से ब्रह्मतेज या ब्रह्मवर्चस का अनुदान दिया।

प्रातः-सायं वेला में गायत्री-साधना, दिवस में स्वाध्याय-प्रवचन, दिन में एक बार दाल-दलिया के अमृताशन का चंद्रमा की घटती-बढ़ती कलाओं के अनुसार भोजन साधकों के जीवन के समस्त विकारों का हरण कर उनमें ब्रह्मतेज प्रतिष्ठित करता था। सायं वेला की साधना सभी साधक मिलकर गंगातट पर करते। वहीं से अपने लिए दिनभर पीने के लिए गंगाजल लाते। सभी अधिकाधिक शांत और मौन रहते। सभी साधकों की साधना में पूज्य गुरुदेव की आध्यात्मिक प्रक्रियाएँ व उनकी तप-ऊर्जा सहज सम्मिलित रहतीं। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

# विषय सूची


❁ आवरण—1 1
❁ आवरण—2 2
❁ चांद्रायण-साधना 3
❁ **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) एवं शिक्षा 5
❁ आत्मज्ञान—मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि 7
❁ गायत्री महामंत्र की साधना से जुड़े आधारभूत तत्त्व 9
❁ सद्गुरु ऐसा कीजिए, लोभ-मोह-भ्रम नाहिं 11
❁ आध्यात्मिक अनुशासन है उपासना 14
❁ उठो, जागो और आगे बढ़ो 16
❁ कर्मयोग की सर्वसुलभ साधना 17
❁ वेदों में नारी का वैभव 20
❁ **पर्व विशेष—होली पर्व**
होली में जीवन की अशुद्धियाँ दहन हों 22
❁ जीवनमूल्य की श्रेष्ठता 26
❁ पूज्य गुरुदेव के साहित्य में व्यावहारिक अध्यात्म के सूत्र 28
❁ योग-साधना का उद्देश्य और प्रभाव 30
❁ स्वस्थ-सुखी वृद्धावस्था के स्वर्णिम सूत्र 31
❁ ऋतु-परिवर्तन के प्रभाव 34
❁ सुखी जीवन का आधार 36
❁ पेड़-पौधों का आश्चर्यजनक संसार 38
❁ विकृत दृष्टिकोण ही परेशानियों का कारण 40
❁ **हमारा युग निर्माण सत्संकल्प—2**
शरीर है भगवान का मंदिर 42
❁ **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—204**
यौगिक अभ्यासों का किशोरों पर प्रभाव 46
❁ **युगगीता—310**
बिना सोचे, बिना विचारे कार्य करता है तमोगुणी मनुष्य 49
❁ **विश्वविद्यालय परिसर से—249**
जीवन-विद्या की ज्योति जलाता विश्वविद्यालय 51
❁ **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
पात्रता का विकास (पूर्वार्द्ध) 55
❁ **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
नैतिकता का आत्मानुशासन 60
❁ **अपनों से अपनी बात**
नवरात्र पर्व और गायत्री-साधना 63
❁ होली आई रे (कविता) 66
❁ आवरण—3 67
❁ आवरण—4 68


## आवरण पृष्ठ परिचय

**कृत्रिम, बुद्धिमत्ता ( AI ) एवं शिक्षा के समन्वय का दृश्यांकन**

## मार्च-अप्रैल, 2026 के पर्व-त्योहार

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| सोमवार | 02 मार्च | होलिका दहन | बुधवार | 01 अप्रैल | पूर्णिमा व्रत |
| मंगलवार | 03 मार्च | धूलिवंदन/ पूर्णिमा व्रत | गुरुवार | 02 अप्रैल | हनुमान जयंती |
| बुधवार | 11 मार्च | शीतलाष्टमी | सोमवार | 13 अप्रैल | वैशाखी/ वरूथिनी एकादशी |
| रविवार | 15 मार्च | पापमोचनी एकादशी | मंगलवार | 14 अप्रैल | आंबेडकर जयंती |
| गुरुवार | 19 मार्च | रौद्र संवत्सरारंभ/नवरात्रारंभ | रविवार | 19 अप्रैल | भगवान परशुराम जयंती |
| शनिवार | 21 मार्च | गणगौर | सोमवार | 20 अप्रैल | अक्षय तृतीया |
| गुरुवार | 26 मार्च | श्रीराम नवमी | गुरुवार | 23 अप्रैल | गंगोत्पत्ति |
| रविवार | 29 मार्च | कामदा एकादशी व्रत | शनिवार | 25 अप्रैल | जानकी नवमी |
| मंगलवार | 31 मार्च | महावीर जयंती | सोमवार | 27 अप्रैल | मोहिनी एकादशी |
| | | | गुरुवार | 30 अप्रैल | नृसिंह जयंती |

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

**▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀**

विशिष्ट सामयिक चिंतन

# कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए. आई.) एवं शिक्षा

आज जीवन के हर क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता अर्थात ए०आई० (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) का बोलबाला है। ए०आई० समाचार की सुर्खियों से आगे जीवन के हर पक्ष का हिस्सा बनती जा रही है। स्वास्थ्य, कृषि, बैंकिंग, यातायात, सुरक्षा, अनुवाद, भविष्यकथन, सर्च इंजन—हर क्षेत्र में इसकी सशक्त उपस्थिति दर्ज हो रही है। शिक्षा-क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। भारतीय शिक्षा-क्षेत्र में ए०आई० का समावेश दिन-प्रतिदिन गति पकड़ रहा है।

एनईपी-2000 में तकनीकी समावेश के अंतर्गत ए०आई० को पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से जोड़ने की बात कही गई है, जिसके परिणामस्वरूप कॉलेज एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में ए०आई० को शामिल किया जा रहा है। इंडिया ए०आई० मिशन के अंतर्गत शिक्षा में ए०आई० सेंटर फॉर एक्सिलेंस खोलने की महत्त्वाकांक्षी योजना प्रारंभ हो चुकी है, जिसका उद्देश्य वर्ष-2047 तक भारत को ए०आई० के क्षेत्र में शीर्ष स्थान पर स्थापित करना है।

सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एजूकेशन (सीबीएसई) में 9वीं से 12वीं तक इलेक्टिव कोर्स के रूप में ए०आई० को शामिल किया जा चुका है। कई प्रांतों के स्कूली-बोर्ड में इस तरह की पहल हो चुकी है। इसी तरह सीआईएससीएस बोर्ड में ए०आई० और रोबोटिक्स को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है।

'ए०आई० फॉर ऑल' नीति के अंतर्गत नीति आयोग ए०आई० की आधारभूत साक्षरता को प्रोत्साहित एवं सुनिश्चित करने की दिशा में अग्रसर है। आई०आई०टी० जैसे संस्थानों में तो ए०आई० पहले से ही विशेषज्ञता के स्तर पर पढ़ाया जा रहा है।

कई आई०आई०टी० केंद्रों में ए०आई० पर विशिष्ट बीटेक एवं एमटेक प्रोग्राम चल रहे हैं और कई तरह के अन्य ए०आई० पाठ्यक्रम भी प्रारंभ हुए हैं, जो स्वयं (SWAYAM) प्लेटफॉर्म पर आम विद्यार्थियों व जिज्ञासुओं की ए०आई० संबंधी आधारभूत दक्षता की दृष्टि से निःशुल्क उपलब्ध हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में भी वर्ष-2025 से एनईपी-2020 के अंतर्गत विभिन्न विभागों द्वारा ए०आई० को अपने पाठ्यक्रमों में समाविष्ट किया गया है। यहाँ का आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस शोध केंद्र तो पूर्व से ही ए०आई० के मल्टीडिस्प्लिनरी क्षेत्र की उच्चस्तरीय शोध में संलग्न है। पाठ्यक्रम में ए०आई० के समावेश से पहले ही विद्यार्थी, शोधार्थी एवं शिक्षक ए०आई० के उपकरणों का उपयोग प्रारंभ कर चुके हैं।

इसके आधार पर अब कई घंटों में होने वाले कार्य कुछ मिनटों, सेकंडों में संपन्न हो रहे हैं। भारतीय विद्यार्थियों द्वारा ए०आई० टूल्ज का उपयोग शोध एवं सूचना एकत्रीकरण, लेखन एवं सामग्री सृजन (कंटेंट क्रिएशन) आदि में किया जा रहा है। अब ए०आई० टूल्ज के माध्यम से नोट्स बनाने से लेकर प्रजेंटेशन तैयार करने, वीडियो संपादन आदि कार्य बहुत सरल हो गए हैं।

शिक्षक भी ए०आई० टूल्ज का भरपूर उपयोग कर रहे हैं। पुनरावृत्ति वाले कार्यों में ए०आई० बहुत उपयोगी साबित हो रहा है। ग्रेडिंग से लेकर पाठ योजना (लेसन प्लानिंग) एवं मूल्यांकन आदि में ए०आई० का उपयोग हो रहा है, जिससे शिक्षकों पर प्रशासनिक कार्य का दबाव कम हो रहा है।

शोध को प्रभावी ढंग से निष्पादित करने के लिए ए०आई० में कई उपयोगी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। हालांकि प्रशिक्षण के अभाव में अभी इसके सही उपयोग से अधिकांश विद्यार्थी एवं शिक्षक अनभिज्ञ हैं और इससे जुड़े खतरों से भी परिचित नहीं हैं; तथापि यह सत्य है कि ए०आई० के लाभों के साथ इससे जुड़े खतरे भी कम नहीं हैं।

भारत व विदेश में जहाँ शिक्षा में ए०आई० का उपयोग पूर्व से प्रारंभ हो चुका है, वहाँ ये खतरे अधिक मुखर रूप से सामने आए हैं, जिनके अनुभव से हम सीख सकते हैं। दि सेंटर फॉर टीचर एक्रीडिटेशन में पाँच हजार से अधिक शिक्षकों व हितधारकों के सर्वेक्षण के आधार पर कुछ तथ्य उभरकर सामने आए हैं, जो भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में ए०आई० के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 70 प्रतिशत से अधिक शिक्षक किसी-न-किसी रूप में ए०आई० टूल्ज का उपयोग कर रहे हैं। इनमें 48 प्रतिशत शिक्षक लेसन प्लानिंग में ए०आई० का उपयोग कर रहे हैं। मात्र 26 प्रतिशत शिक्षक कक्षा-आधारित गतिविधियों में विचार-मंथन एवं विचार-सृजन (आइडियाज जनरेट) करने के लिए इसका उपयोग कर रहे हैं।

इस तरह अभी ए०आई० का उपयोग परदे के पीछे अधिक हो रहा है और सीधे विद्यार्थियों से अंतर्क्रिया में इसका उपयोग न के बराबर है। हालांकि शैक्षणिक जगत् में ए०आई० के प्रति उत्साह का वातावरण है, लेकिन इसके उपयोग के संदर्भ में अभी उचित प्रशिक्षण का अभाव दिखता है।

शिक्षकों के साथ विद्यार्थी, अभिभावक व अकादमिक प्रशासन के सर्वेक्षण के आधार पर स्पष्ट हुआ कि उनमें 84 प्रतिशत ए०आई० के संदर्भ में चिंतित हैं। 34 प्रतिशत को भय है कि ए०आई० शिक्षा-क्षेत्र में नौकरियों को छीन सकता है। 23 प्रतिशत ए०आई० से तैयार पाठ्यसामग्री की शुद्धता के संदर्भ में आश्वस्त नहीं हैं।

कुछ की चिंता है कि ए०आई० सृजनात्मकता को प्रभावित कर रही है और इसके दुरुपयोग की संभावना शिक्षा के मूल उद्देश्य से भटका सकती है। इसके साथ संवेदना, प्रोत्साहन, मार्गदर्शन एवं संबल के संदर्भ में भी ए०आई० की अपनी सीमा है। यह मानवीय संवेदना एवं मार्गदर्शन का विकल्प नहीं हो सकती। फिर उपयोगकर्त्ता की डाटा निजता की सुरक्षा का मुद्दा भी विचारणीय है। तकनीक पर अत्यधिक निर्भरता के अपने खतरे भी हैं।

ए०आई० उपकरणों से एसाइन्मेंट व ऑनलाइन परीक्षा आदि में नकल चिंता का विषय है, जो कई जगह नियंत्रण से बाहर होती पाई गई है। साथ ही ए०आई० पर अत्यधिक निर्भरता से विद्यार्थियों का मस्तिष्कीय विकास प्रभावित हो रहा है तथा विद्यार्थियों की विश्लेषणात्मक सोच एवं सृजनात्मक क्षमता बाधित हो रही है। आश्चर्य नहीं कि भारत के कुछ आई०आई०टी० एवं विदेश के विश्वविद्यालयों में ए०आई० के इन खतरों को देखते हुए पुनः बैक टू क्लासरूम, पेपर-पेन एसाइन्मेंट व टेस्ट को अपनाया जाना प्रारंभ हो गया है।

इस तरह शिक्षा में ए०आई० के श्रेष्ठतम उपयोग के लिए आवश्यकता ए०आई० के उचित प्रशिक्षण एवं जिम्मेदार उपयोग की है और इस तथ्य को हृदयंगम करना महत्त्वपूर्ण है कि ए०आई० विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं शोधार्थियों का एक सहायक भर है। इसी रूप में इसका उपयोग किया जाना है, न कि उस पर अत्यधिक निर्भर होते हुए इसका गुलाम बनकर उपयोग करना है।

अपनी मौलिकता, सृजनात्मकता को खोए बिना ए०आई० के उपयोग में समझदारी है। इन सावधानियों को रखते हुए ए०आई० का शिक्षा में समावेश किया जाना समय की माँग है। आखिर विद्यार्थियों को उस पेशेवर जगत् के लिए तैयार किया जाना है, जहाँ ए०आई० पहले से ही व्यवसाय का हिस्सा बन चुका है। ❑

# आत्मज्ञान-मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि

आत्मज्ञान क्या है? जीवन का उद्देश्य और उसका सार क्या है? जीवन के साथ जुड़ी हुई जिज्ञासाओं का सही उत्तर आखिर क्या है? इन्हीं प्रश्नों के समाधान में आत्मज्ञान एक ठोस, तात्त्विक और व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। वास्तव में, आत्मज्ञान वह बोध है, जो हमें जीवन की दिशा और नीति तय करने में सहायता करता है। जो व्यक्ति स्वयं को नहीं जानता, वह दूसरों को या संसार को क्या जानेगा?

आत्मज्ञान के अभाव में जीवन दिशाहीन और उद्देश्यहीन हो जाता है। भले ही हमारे पास भौतिक साधन हों, यदि आत्मबोध नहीं है, तो हम स्थायी संतोष नहीं प्राप्त कर सकते। हमारी सोच बिखरी हुई होती है, निर्णय अस्थिर होते हैं और जीवन एक अधूरी पहेली बनकर रह जाता है। यदि हमारा मन भीतर से शांत नहीं है तो बाहरी संपत्ति और सफलता भी व्यर्थ लगती हैं।

आत्मज्ञान के बिना हम माया-मोह, भ्रम और अहंकार में उलझे रहते हैं। विभिन्न धर्मग्रंथों में आत्मज्ञान को जीवन की सबसे महान उपलब्धि बताया गया है। यह ज्ञान कोई रहस्यमयी बात नहीं, बल्कि एक साधना और सतत अभ्यास का परिणाम है।

इसके लिए न तपश्चर्या की आवश्यकता है, न ही जंगलों में जाने की; बल्कि यह तो एक आंतरिक जागृति है, जो सही दृष्टिकोण, विचार, चिंतन और चरित्र से विकसित होती है। आज संसार में अज्ञानता का अंधकार फैला हुआ है। धर्म के नाम पर आडंबर, राजनीति में स्वार्थ, व्यापार में छल-कपट और जीवन में अवसाद का बोल-बाला है।

इसका मूल कारण आत्मबोध की कमी है। यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को पहचान ले, तो समाज में अनेक समस्याओं का समाधान सहज ही संभव हो जाए। सच तो यह है कि आत्मज्ञान से ही सच्चा धर्म जागता है, शांति की अनुभूति होती है और मानव अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता है। यही मानवता की सबसे बड़ी उपलब्धि है—अपने आप को जानना।

जब तक हम यह नहीं समझते कि हमारे भीतर ही समाधान छिपा है, तब तक जीवन में उथल-पुथल बनी रहती है। आत्मज्ञान ही वह दृष्टि है, जो जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पष्ट करती है। यह केवल दर्शन नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक अनुभव है, जिससे जीवन का हर निर्णय संयमित, विवेकपूर्ण और सुसंगत हो जाता है।

हम प्रायः जीवन की समस्याओं का समाधान बाहरी संसाधनों, संपत्ति, प्रतिष्ठा या दूसरों के व्यवहार में ढूँढ़ते हैं, लेकिन आत्मज्ञान बताता है कि जब तक हम अपने भीतर का दीपक नहीं जलाते, तब तक अंधकार बना रहेगा। दूसरों को सुधारने से पहले अपने भीतर के दोषों को देखना और सुधारना आवश्यक है। यदि मनुष्य को केवल सांसारिक सफलता ही प्राप्त हो, लेकिन वह स्वयं से अपरिचित हो तो वह जीवन की सच्ची उपलब्धियों से वंचित ही रहेगा।

आत्मज्ञान वह दृष्टि है जिससे हम स्वयं को देख पाते हैं—अपने विचारों, भावनाओं,

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

प्रवृत्तियों और कर्मों को जाँच पाते हैं। हममें से अधिकांश लोग बाहरी छवि को सँवारने में लगे रहते हैं, जबकि भीतर का सत्य अनदेखा ही रह जाता है।

यह भीतर की यात्रा है, जो आत्मज्ञान के माध्यम से आरंभ होती है। एक बार जब यह अंतर्दृष्टि विकसित हो जाती है, तब हम अपने परिवार, समाज और संसार के प्रति भी अधिक संवेदनशील और उत्तरदायी बन जाते हैं। सच्चा आत्मज्ञान हमारे आचरण में विनम्रता, व्यवहार में संयम और जीवन में उद्देश्य ले आता है। इससे जीवन की दिशा स्पष्ट होती है, निर्णय सटीक होते हैं और व्यक्तित्व स्थिर बनता है।

इससे व्यक्ति केवल स्वयं का ही नहीं, बल्कि पूरे समाज का हित कर सकता है। वह अपने परिवार में सौहार्द और सहयोग लाता है, समाज में प्रेरणा बनता है और राष्ट्र के लिए मूल्यवान मानव संसाधन के रूप में खड़ा होता है।

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि आत्मज्ञान कोई दूरस्थ आदर्श नहीं, बल्कि वह जीवनपद्धति है, जो प्रतिदिन के विचारों, भावनाओं और कार्यों के माध्यम से विकसित होती है। ❑

---

**शिष्य ने गुरु कबीर से पूछा—"गुरुवर! मनुष्य कर्म करने को स्वतंत्र है तो उसका परिणाम पाने को स्वतंत्र क्यों नहीं है? यदि कर्मों को करने की स्वतंत्रता है तो उनके परिणामों को चुनने की स्वतंत्रता भी होनी चाहिए।" कबीर उसका प्रश्न सुनकर मुस्कराए और बोले—"अभी तुम मुझे पंखा झल दो, थोड़ी देर में तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ।" शिष्य ने चुपचाप गुरु का कहा मान लिया। उसे पंखा झलते थोड़ा समय बीता था कि कबीर बोले—"तुम अपना एक पैर उठा लो।"**

**शिष्य ने पुनः गुरु का कहा माना और अपना बायाँ पैर उठाकर खड़े हो गए। कबीर ने थोड़ा समय निकल जाने पर पुनः कहा—"अब तुम अपना दायाँ पैर भी उठा लो।" शिष्य के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह बोला—"आप भी कैसी बातें करते हैं? मैं दोनों पैर एक साथ कैसे उठा सकता हूँ।"**

**कबीर बोले—"पुत्र! यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। तुम अपना एक पैर उठाने के लिए स्वतंत्र थे, पर एक पैर उठाते हो, दूसरा स्वतः बँध जाता है। इतनी ही स्वतंत्रता कर्म करने में है, कर्म करते ही मनुष्य परिणाम से बँध जाता है। इसलिए परिणाम पर ध्यान देने के स्थान पर निष्काम कर्म करने पर मनोभावों को लगाना ज्यादा श्रेष्ठ है।"**

# गायत्री महामंत्र की साधना से जुड़े आधारभूत तत्त्व

गायत्री महामंत्र भारतीय संस्कृति का नवनीत है। इसमें निहित विशेषताओं के कारण ही माँ गायत्री को 'वेदमाता' कहा गया है। गायत्री मंत्र के तीन चरण और एक शीर्ष मिलने से चार विभाग बनते हैं। एक-एक विभाग में एक वेद का सार समाहित है। इस तरह गायत्री के चार चरणों में वेदों का सारतत्त्व निहित है, इसलिए इसे संसार का सबसे छोटा धर्मशास्त्र भी कह सकते हैं।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भगवान श्रीकृष्ण गायत्री के विषय में कहते हैं, '**गायत्री छन्दसामहम्**'— अर्थात छंदों में गायत्री मैं स्वयं हूँ।

गायत्री महामंत्र की फलश्रुति आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन-संपदा, ब्रह्मवर्चस और मोक्ष— मुक्ति के रूप में वर्णित है, लेकिन गायत्री मंत्र के मात्र अक्षर याद करने या दोहराने भर से काम चलने वाला नहीं, इसमें निहित तत्त्वज्ञान पर भी गहरी दृष्टि डालनी होगी। इसे हृदयंगम करना होगा और जीवनचर्या में इसके सारतत्त्व को समाविष्ट करना होगा, जिससे मलिनता का निराकरण हो सके और इससे जुड़ी गरिमा का अनुभव संभव हो सके।

गायत्री मंत्र का प्रथम चरण '**ॐ भूः भुवः स्वः**' ईश्वर की सर्वव्यापकता को इंगित करता है, जिसके चिंतन-मनन से आस्तिकता का भाव प्रगाढ़ हो उठता है।

दूसरा '**तत् सवितुर्वरेण्यम्**' है। **सवितः** अर्थात ईश्वर के स्वप्रकाशित स्वरूप का उदीयमान स्वर्णिम सूर्य-रूप में वरण करने का भाव और तीसरा '**भर्गो देवस्य धीमहि**' जिसमें भर्ग सूर्य के तेज, मन्यु व शौर्य-साहस का प्रतीक है।

एक गायत्रीसाधक अनीति, अत्याचार व अवांछनीयता से समझौता नहीं कर सकता, इनके आगे सिर नहीं झुका सकता। इसे असुरता के विरुद्ध विवेक की प्रतिक्रिया के रूप में भी देखा-समझा जा सकता है। देवस्य देवत्व का, देने का, शालीनता को अपनाते हुए उदारचेता बने रहने का प्रतीक है। धीमहि देवत्व के अनुरूप व्यक्तित्व में गौरव-गरिमा को धारण करने का भाव है, जो व्यक्ति को किसी से कुछ माँगने व किसी भी तरह की संकीर्णता व ओछेपन को अपनाने में संकोच का भाव देता है।

चौथा '**धियो यो नः प्रचोदयात्**' सबके लिए सद्‌बुद्धि की प्रार्थना है। स्वयं के साथ अपने समूह, समाज एवं संसार में सद्‌बुद्धि की प्रेरणा उभारना है। यह मेधा, प्रज्ञा, दूरदर्शी विवेकशीलता, नीर-क्षीर विवेक में निरत बुद्धिमत्ता का वरदान गायत्री साधक को देने वाला है। इस तत्त्वदर्शन के साथ गायत्री महामंत्र की साधना साधक को महाप्रज्ञा का वह प्रसाद देती है, जिससे उसके व्यक्तित्व में आस्तिकता, साहसिकता, देवत्व की पक्षधर शालीनता एवं आदर्शवादिता ओतप्रोत हो उठती हैं और निरंतर उनके अनुपात में वृद्धि होती है।

इस आस्था को अपनाने के उपरांत उस संकीर्णता, कृपणता, स्वार्थपरता की व्यक्तित्व में गुंजाइश नहीं रह जाती, जो दूसरों के अधिकारों का हनन कर, अनुचित स्तर का लाभ बटोरने की कुचेष्टा कर सके या अपराधी, आततायी कहलाने का पतन-पराभव अपना सके।

शिखा और सूत्र गायत्री-साधना से जुड़े दो पावन प्रतीक हैं, जिन्हें हर गायत्रीसाधक धारण करता है।

**'नारी सशक्तीकरण' वर्ष**

दीक्षा के समय सिर पर गायत्री का ध्वजारोहण शिखा के रूप में किया जाता है। सूत्र अर्थात यज्ञोपवीत। उसका धारण नरपशु से नररूपी नारायण के जीवन में प्रवेश कराता है। दीक्षा के उपरांत व्यक्ति 'द्विज' कहलाता है। द्विज अर्थात जीवनचर्या को आदर्शों के अनुशासन में बाँधना। यह मानवीय गरिमा के अनुरूप परिष्कृत जीवन जीने का संकल्प है।

यह स्मरण प्रतीक रूप में हृदय, कंधे, पीठ आदि शरीर के प्रमुख अंगों पर हर घड़ी सवार रहे, इसलिए नौ महान सद्‌गुणों का प्रतीक 'उपनयन' हर वयस्क को पहनाया जाता है। कंधे पर धारण किया गया जनेऊ काय-कलेवर को देवमंदिर जैसा पावन बना देता है।

यज्ञोपवीत के नौ धागे, मानवीय विशिष्टता के अनुरूप नौ गुणों को सतत बढ़ाने की प्रेरणा देते रहते हैं। पूज्य गुरुदेव के शब्दों में, अनेकानेक सद्‌गुणों की, धर्म-लक्षणों की गणना में नौ को प्रमुखता दी गई है। वे पास में हों तो समझना चाहिए कि पुरातनकाल में नौलखे हार की जो प्रतिष्ठा थी, वह अपने को भी करतलगत हो गई। ये नौ गुण इस प्रकार हैं—

1. श्रमशीलता,
2. शिष्टता,
3. मितव्ययिता,
4. सुव्यवस्था,
5. उदार सहकारिता,
6. समझदारी,
7. ईमानदारी,
8. जिम्मेदारी एवं
9. बहादुरी।

उपरोक्त में से पाँच क्रियापरक हैं और चार भावनापरक हैं। इन नौ गुणों के समुच्चय को ही धर्मधारणा कहते हैं। गायत्री मंत्र के दो शब्द इन्हीं नौ दिव्य संपदाओं को धारण किए रहने की प्रेरणा देते हैं। यज्ञोपवीत के नौ धागे भी यही हैं। उन्हें गायत्री की प्रतीक-प्रतिमा माना गया है और इनके निर्वहन के लिए सदैव तत्परता बरतने के लिए, उसे कंधे पर धारण कराया जाता है।

मानवीय गरिमा से जुड़े हुए नौ अनुशासन भरे उत्तरदायित्व कंधे पर धारण करना ही वस्तुतः यज्ञोपवीत धारण करने का मर्म है। इन्हीं को सच्चे अर्थों में गायत्री मंत्र का जीवनचर्या में समावेश कहते हैं।

मंत्रदीक्षा, गुरुदीक्षा के समय भी इन नौ अनुशासनों को हृदयंगम कराया जाता है। गायत्री मंत्र की साधना से व्यक्ति में यह नौ सद्‌गुण उभरते हैं।

---

**आचार्यः अस्मादाचारः ग्राह्यःइतिः आचिनोत्यर्थानाचिनोति बुद्धिमिति वा॥**

***अर्थात जिस व्यक्ति से आचार करने की बुद्धि ग्रहण की जाती है, वह आचार्य कहलाते हैं।***

---

चिंतन, चरित्र और व्यवहार में इन्हें अपनाने वालों पर दैवी अनुग्रह बरसते हैं और वे उस गौरव के भागीदार बनते हैं, जो देवत्व के साथ जुड़ने वालों को मिला करता है। जीवन-साधना से जुड़ने वाले गायत्री महामंत्र के नौ अनुशासनों का अपने जीवन-क्रम के हर पक्ष में समन्वय किया जाना चाहिए।

श्रद्धा-विश्वासपूर्वक सच्चे मन से की गई गायत्री-उपासना का सर्वप्रथम परिचय इन सद्‌गुणों की अभिवृद्धि के रूप में परिलक्षित होता है। इसके बाद वह पक्ष आरंभ होता है, जिसे अलौकिक, आध्यात्मिक या अतींद्रिय कहा गया है। यह कहने का इतना ही तात्पर्य है कि गायत्री-साधना उपासक के इहलोक और परलोक, दोनों को साधने व धन्य करने वाली सिद्ध होती है। ❑

# सद्गुरु ऐसा कीजिए, लोभ-मोह-भ्रम नाहिं

सद्गुरु को पाकर साधक मानो सब कुछ प्राप्त कर लेता है; क्योंकि सद्गुरु की कृपा से ही साधक के लिए मोक्ष का द्वार खुल जाता है और वह कभी संसाररूपी बंधन में नहीं बँधता, पर प्रश्न यह उठता है कि ऐसे सद्गुरु की पहचान हम करें तो कैसे करें ? क्योंकि आज के समय में तथाकथित गुरुओं की भरमार ज्यादा है। जहाँ धर्म भी धंधा और उत्पाद बन चुका हो, वहाँ आमजन के लिए, सामान्यजन के लिए धर्म-तत्त्व की पहचान और सद्गुरु की पहचान कर पाना असंभव-सा होता है।

फलस्वरूप आमजन तथाकथित गुरुओं के बिछाए जाल में फँसकर अपना समय, श्रम, साधन व्यर्थ गँवाते हैं और अंततः सिवाय पश्चात्ताप के उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता। इसलिए संत कबीर जैसे सद्गुरु आमजन को, सामान्यजन को ऐसे तथाकथित गुरुओं से सावधान रहने की स्पष्ट सलाह देते हैं—

**काका गुरु है आंधरा,**
**चेला खरा निरंध।**
**अंधे को अंधा मिला,**
**पड़ा काल के बंध॥**
**जानंता पूछी नहीं,**
**पूछि किया नहिं गौन।**
**अंधे को अंधा मिला,**
**राह बतावे कौन॥**
**आगे अंधा कूप में,**
**दूजे लिया बुलाय।**
**दोनों बूड़े बापुरे,**
**निकसे कौन उपाय॥**
**गुरु किया है देह का,**
**सतगुरु चीन्हा नाहिं।**
**भवसागर के जाल में,**
**फिरि फिरि गोता खाहिं॥**
**जा गुरु ते भ्रम न मिटै,**
**भ्रांति न जिवका जाय।**
**सो गुरु झूठा जानिये,**
**त्यागत देर न लाय॥**
**जा गुरु को तो गम नहीं,**
**पाहन दिया बताय।**
**शिष्य शोधे बिन सेइया,**
**पार न पहुँचा जाय॥**
**कबीर बेड़ा सार का,**
**उपर लादा सार।**
**पापी का पापी गुरु,**
**यों बूड़ा संसार॥**
**गुरुवा तो सस्ता भया,**
**कौड़ी अर्थ पचास।**
**अपने तन की सुधि नहीं,**
**शिष्य करन की आस॥**
**गुरुवा तो घर-घर फिरे,**
**दीक्षा हमारी लेय।**
**कै बूड़ो कै उबरो,**
**टका परदनी देय॥**

अर्थात संत कबीर के कहने का आशय यह है कि यदि गुरु ही अंधा (अविवेकी, अज्ञानी) है तो वह शिष्य को ज्ञान का मार्ग कैसे दिखाएगा ? वह शिष्य भी महा अविवेकी होगा। अविवेकी, अज्ञानी शिष्य को अविवेकी, अज्ञानी गुरु मिल गया तो

परिणाम दुःखद ही होगा, क्योंकि दोनों अज्ञानी अपने-अपने दाँव खेलेंगे और दोनों बेचारे अज्ञानरूपी पत्थर की नाव पर बैठकर डूब मरेंगे।

अज्ञानी गुरु तो स्वयं ही पहले से ही भ्रम के कुएँ में गिरा पड़ा था और फिर उसने शिष्य को भी बुलाकर उसी कुएँ में डाल दिया। वे दोनों बेचारे उसी में डूब गए, फिर वे निकलें कैसे? केवल जाति, रंग-रूप, वेश-विन्यास को देखकर ही जिसने किसी को गुरु किया, उसने मानो देह को ही गुरु बनाया है। वह वास्तविक गुरु को, सद्गुरु को पहचान नहीं पाया, परख नहीं पाया। फिर ऐसे लोग तो बारंबार भवसागर में डूबेंगे ही।

जिस गुरु को स्वयं ज्ञानमार्ग का पता नहीं, उसने शिष्य को केवल पत्थर पूजना बता दिया और बिना परख, पहचान किए ही शिष्य भी यदि उसी का सेवन करने लगा, उसी का अनुसरण करने लगा तो वह भवसागर से, दुःख-सागर से पार कैसे होगा? एक बँधे शिष्य को दूसरा बँधा गुरु मिल गया तो वह शिष्य भला मुक्त कैसे हो सकेगा? यदि लोहे की नाव पर लोहे का भार लद गया, पापी मनुष्य को पापी गुरु मिल गया, तो फिर डूबने से कौन बचाएगा?

अस्तु, ऐसे तथाकथित गुरु को त्यागने में शिष्य को विलंब नहीं करना चाहिए। दरअसल कोई कुशल तैराक ही किसी को तैराक बना सकता है। पानी में डूब रहे व्यक्ति को कोई तैरने वाला ही बचा सकता है। खेल में निष्णात खिलाड़ी ही किसी को खेल सिखा सकता है। कोई पहलवान ही किसी को पहलवानी सिखा सकता है।

उसी प्रकार एक आत्मा में ब्रह्मज्ञान जाग्रत करना, उसे ब्राह्मीभूत, ब्रह्मपरायण बनाना केवल उसी के लिए संभव है, जो स्वयं ब्रह्मज्ञानी हो, ब्रह्मपरायण हो और जो स्वयं ब्रह्मानुभूति कर ब्रह्मतत्त्व में ओत-प्रोत हो रहा हो। जिसमें स्वयं अग्नि होगी, वही दूसरों को प्रकाश और गरमी दे सकेगा अन्यथा अग्नि का चित्र कितना भी आकर्षक क्यों न हो, उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकेगा।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव, जिनके मार्गदर्शन में कोटिशः लोगों ने आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त किया, का स्पष्ट मानना है कि "जिसमें ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मतेज की अग्नि है, वही ब्रह्मज्ञानी है। मात्र वेश-विन्यास बना लेने से कोई ज्ञानी, महात्मा, साधु नहीं हो जाता। अपितु जिसने रागों से मन को बचा लिया है, वही वैरागी है; जो मनन में लीन रहता हो वही मुनि है; जिसने अहंकार को, मोह-ममता को त्याग दिया है, वही संन्यासी है और जो तप में प्रवृत्त है, वही तपस्वी है। कौन क्या है? इसका निर्णय गुण-कर्म से होता है, वेश-विन्यास से नहीं। ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मज्ञानी ही सद्गुरु हो सकते हैं, अन्य नहीं।"

कहने का तात्पर्य यह है कि किसी ब्राह्मीभूत, ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मपरायण, ब्रह्मतत्त्व में ओत-प्रोत किसी संत, महात्मा, तपस्वी, ऋषि, मुनि, योगी, सद्गुरु की शरण पाने से ही हमारा आत्मकल्याण हो सकता है।

इसलिए गुरुगीता भी इसी सत्य को प्रकाशित करते हुए कहती है—

**ब्रह्मानंदं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं**
**द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।**
**एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं**
**भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥**

अर्थात जो ब्रह्मानंद स्वरूप हैं, परम सुख देने वाले हैं, जो केवल ज्ञानस्वरूप हैं, ज्ञान देने वाले हैं, जो सुख-दुःख आदि द्वंद्वों से रहित हैं, जो सद्गुरुदेव गगन के समान सूक्ष्म और सर्वव्यापक हैं, जो तत्त्व रहस्यों आदि महालक्ष्यों को पाना ही अपना लक्ष्य समझते हैं, जो एक हैं, नित्य हैं, मलरहित हैं,

अचल हैं, सभी बुद्धियों के साक्षी हैं, जो भावना से परे हैं, सत्, रज, तम तीनों गुणों से रहित हैं, ऐसे श्रीसद्गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, विश्वामित्र, वसिष्ठ आदि प्राचीन ऋषियों से लेकर आचार्य शंकर, श्री रामानुजाचार्य, नरसी मेहता, रामानंदाचार्य, सूरदास, संत कबीर, एकनाथ, तुलसीदास, रैदास, तुकाराम, नामदेव, देवरहा बाबा, महावतार बाबा, परमहंस योगानंद, स्वामी रामतीर्थ, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्रीअरविंद, महर्षि रमण, पूज्य गुरुदेव आदि उसी श्रेणी में आते हैं, जो गुरुगीता में वर्णित सद्गुरुदेव की कसौटी पर पूर्णत: खरे उतरते हैं और जिनके आश्रय और ज्ञान को पाकर कोटिश: शिष्यों का जीवन प्रकाशित हुआ है और जिनकी चेतना सर्वव्यापी है और आज भी साधकों, शिष्यों का मार्गदर्शन और संरक्षण देने को सक्रिय है।

ऐसे ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मज्ञानी गुरु ही सद्गुरु हैं और गुरु के रूप में वरण करने योग्य हैं। इसलिए हमें ऐसे सद्गुरु की शरण और आश्रय पाकर, उनके उपदेश को अपने जीवन में जीकर, उतारकर स्वयं को प्रकाशित और आनंदित करने का प्रयास-पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए।

हम सभी के लिए संत कबीर का भी यही उपदेश है—

**सद्गुरु ऐसा कीजिये,**<br>
**लोभ मोह भ्रम नाहिं।**<br>
**दरिया सो न्यारा रहे,**<br>
**दीसे दरिया माहिं॥**<br>
**सांचे गुरु के पक्ष में,**<br>
**मन को दे ठहराय।**<br>
**चंचल से निश्चल भया,**<br>
**नहिं आवै नहिं जाय॥**

अर्थात सच्चे गुरु के प्रति मन को जोड़ दो। मन को गुरु से जोड़ते ही तुम परमपद पा जाओगे और जन्म-मरण से छूट जाओगे। □

---

**अमावस्या की रात में दीपक ने देखा कि आकाश में न चाँद है और न तारे। बस वह अकेला ही संसार को प्रकाश दे रहा है। अपने इस पराक्रम पर उसको अभिमान हो गया और वह समस्त संसार को संबोधित करता हुआ बोला—"जरा मेरी महिमा को देखो, मेरी ही कृपा से तुम सब तुच्छ प्राणी अंधकार में कुछ देख पा रहे हो। मुझे प्रणाम करो, मेरी दयालुता का गुणगान करो।"**

**दीपक की इस अहंकारोक्ति को बाकी सबने महत्त्व दिया, परंतु एक जुगनू से न रहा गया और वह बोला—"एक रात के अस्तित्व पर इतना अहंकार। तनिक ठहरो, प्रभात होने पर तुमसे तुम्हारी वास्तविकता पूछूँगा।"**

**अधिकार पाकर किसी को मदांध नहीं हो जाना चाहिए।**

---

# आध्यात्मिक अनुशासन है उपासना

उपासना का तात्पर्य केवल मंदिरों और तीर्थों में दीप जलाने या पूजा-पाठ करने भर से नहीं है। उपासना वास्तव में एक ऐसा आध्यात्मिक अनुशासन है, जो जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाता है, मन को सात्त्विकता में स्थिर करता है और अंतःकरण को शुद्ध कर प्रभु के सान्निध्य के योग्य बनाता है। प्रश्न यह नहीं है कि लोग पूजा क्यों नहीं करते, बल्कि यह है कि उनकी पूजा सार्थक क्यों नहीं हो पा रही?

यदि हम देखें तो अधिकांश लोगों की उपासना मात्र एक औपचारिकता बनकर रह गई है। वह जीवन की आवश्यकताओं और चुनौतियों से जुड़ नहीं पाती, इसलिए उसका कोई गहरा प्रभाव भी नहीं दिखता। वास्तविक उपासना का स्वरूप आत्मशुद्धि और अंतःकरण की निर्मलता से जुड़ा होता है। वह मनुष्य के भीतर जागरूकता और अनुशासन का संचार करती है। ऋषियों ने उपासना को जीवन की मूलधारा बनाया था।

वे प्रतिदिन आत्मनिरीक्षण, साधना और तप से स्वयं को संस्कारित करते थे। उनके लिए उपासना केवल कर्मकांड नहीं थी, वह जीवनशैली थी। आज की परिस्थिति में यह आवश्यक है कि हम उपासना को केवल एक बाहरी अनुष्ठान न मानें, बल्कि उसे भीतर के बदलाव का माध्यम बनाएँ। उपासना से प्राप्त शांति, धैर्य, करुणा, विवेक और साहस ही वे गुण हैं, जो किसी भी व्यक्ति को जीवन के संघर्षों में स्थिर रहने और सत्य-मार्ग पर चलने की शक्ति प्रदान करते हैं।

सच्ची उपासना वह है, जो अंतःकरण को इतना निर्मल बना दे कि ईश्वर उसमें प्रतिबिंबित हो उठे। जब मनुष्य का हृदय आस्था, श्रद्धा और भक्ति से भर जाता है, तभी वह उपासना की उस ऊँचाई को छू पाता है, जहाँ साधक और साध्य एकाकार हो जाते हैं। इसलिए उपासना का स्वरूप संकुचित न होकर जीवनव्यापी होना चाहिए। उसकी सुगंध केवल मंदिरों में ही नहीं, हमारे व्यवहार, विचार और संबंधों में भी झलकनी चाहिए। तभी वह सच्चे अर्थों में फलदायी और प्रभु को अर्पित कही जा सकती है।

उपासना का मूल उद्देश्य आत्मिक शुद्धि है, जिसके माध्यम से मनुष्य अपने भीतर की नकारात्मक प्रवृत्तियों को पहचान कर उन्हें रूपांतरित करता है। यह केवल धार्मिक अनुष्ठानों की प्रक्रिया नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षण को ईश्वर संरचित बनाकर जीने की साधना है। जहाँ नियमित उपासना होती है, वहाँ वातावरण स्वतः ही पवित्र और अनुशासित हो जाता है। जैसे सुवासित पुष्प अपने आस-पास की वायु को सुगंधित कर देते हैं, वैसे ही उपासक अपने परिवेश को दिव्यता और सौहार्द से भर देते हैं। यह एक मौन और गहन प्रभाव है, जो बिना शब्दों के भी बहुत कुछ कह जाता है।

शास्त्रों में वर्णित है कि उपासना केवल एक व्यक्ति का आंतरिक प्रयास नहीं, बल्कि समष्टिगत चेतना को जगाने का माध्यम है। जब मनुष्य अपने मन, वचन और कर्म को एकाग्र कर उपासना करता है, तब वह विश्वचेतना से जुड़ता है और उसके भीतर से प्रकाश प्रस्फुटित होता है, किंतु ध्यान देने योग्य बात यह है कि उपासना केवल तब सार्थक बनती है, जब वह मन और जीवन की शुचिता के साथ की जाए।

यदि बाहर पूजा-पाठ हो रहा हो और भीतर द्वेष, क्रोध, लोभ, दिखावा और स्वार्थ पल रहे हों, तो ऐसी उपासना न तो मन को निर्मल कर सकती है और न ही आत्मा को ऊर्ध्वगामी। सच्ची उपासना वह है, जो मन को संयमित करे, इंद्रियों को नियंत्रित रखे और जीवन को एक सुंदर अनुशासन में ढाल दे। आज जब भौतिकता के आकर्षण से मानव-जीवन दिशाहीन होता जा रहा है, तब उपासना ही वह केंद्र है, जहाँ लौटकर आत्मा विश्राम पा सकती है।

यह हमें स्मरण कराती है कि जीवन केवल भोग और दौड़ का नाम नहीं है। यह आत्मविकास, सेवा और प्रेम का अवसर है। उपासना के माध्यम से मनुष्य अपने जीवन को ऐसे मूल्य प्रदान करता है, जो उसे स्थायित्व, संतुलन और परिपक्वता की ओर ले जाते हैं। वह जीवन को एक उत्सव की भाँति जीना सीखता है, जहाँ प्रत्येक दिन प्रभु के नाम और कृतज्ञता से आरंभ होता है।

अत: आवश्यकता इस बात की है कि उपासना को केवल एक धार्मिक कर्त्तव्य न मानकर, उसे जीवन की आत्मा बनाया जाए, ऐसी आत्मा जो हर कर्म को साधना और हर श्वास को प्रार्थना बना दे। सच्ची उपासना केवल बाहरी पूजा-अर्चना नहीं, अपितु यह जीवन की एक ऊर्ध्वगामी प्रक्रिया है, जो मनुष्य को स्थूल-से-सूक्ष्म और सूक्ष्म से दिव्यता की ओर ले जाती है। यह केवल धार्मिक परंपरा नहीं, वरन आत्मा की साधना है।

उपासना में केवल शब्दों की गूँज नहीं होती, वहाँ हृदय की आहटें भी सुनाई देती हैं। यदि संकीर्ण मनोवृत्तियाँ और वासनात्मक इच्छाएँ बलवती हों तो ईश्वर का साक्षात्कार एक कल्पनामात्र बनकर रह जाता है। उपासना वहाँ साकार होती है, जहाँ अंत:करण निर्मल हो और जीवन सच्चे अर्थों में संयमित हो। आज की दुनिया में उपासना का पुन: सजीव हो उठना अत्यंत आवश्यक है।

यह एक ऐसा स्तंभ है, जिस पर आत्मिक संस्कृति का समग्र भवन खड़ा होता है। उपासना के बिना धर्म केवल रूढ़ियों का ढाँचा बनकर रह जाता है। उसमें रस नहीं, ऊर्जा नहीं, चेतना नहीं। स्मरण रहे कि उपासना का लक्ष्य केवल ईश्वर को प्रसन्न करना नहीं है, वरन आत्मा को परमात्मा के स्पर्श से प्रकाशित करना है।

यह एक तपस्या है, जो भीतर से बाहर तक हर कोने को आलोकित कर देती है। जिस प्रकार दीपक का प्रकाश अपने आस-पास के अंधकार को चीर देता है, वैसे ही उपासना जीवन के तम को हर लेती है।

ध्यान, जप, ध्यानयुक्त कर्म, सेवा और ईश्वर के प्रति एकनिष्ठ भाव, ये सब उपासना के रूप हैं, किंतु इन सबका सार यह है कि मनुष्य अपने भीतर उठती वासनाओं, द्वेषों और लोभों को शांत करे और उस मौन में प्रवेश करे, जहाँ आत्मा प्रभु से संवाद करती है।

आज की सभ्यता जिसे आधुनिकता का नाम देती है, वह उपासना से दूर जाकर अपनी ही जड़ों से कट रही है। भोग की अति, उपभोग की होड़ और कृत्रिमता की चकाचौंध ने मनुष्य को अंत:शून्यता की ओर धकेल दिया है। ऐसे में उपासना ही है, जो जीवन को फिर से गरिमा, गहराई और उद्देश्य दे सकती है।

हमें उपासना को एक जीवंत अभ्यास बनाना होगा; केवल आरती और प्रार्थना के समय, बल्कि जीवन के हर क्षण में। उपासना वही है, जो विचारों में पवित्रता, भावों में करुणा और कर्मों में सेवा की प्रेरणा भर दे।

अत: यह समय की पुकार है कि हम उपासना को केवल मंदिरों की दीवारों तक सीमित न रखें, बल्कि उसे अपने जीवन का स्वभाव और स्वभाव का सौंदर्य बना लें। यही सच्ची साधना है, यही युगधर्म है। ❑

# उठो, जागो और आगे बढ़ो

"उठो, जागो और आगे बढ़ो।" यह आह्वान बार-बार हमारी चेतना को झकझोरता है। यह केवल कोई बाहरी आदेश नहीं, बल्कि परमपिता की वह पुकार है, जो हमारी अंतरात्मा में निरंतर गुंजायमान होती रहती है। यद्यपि हममें से अनेक लोग इसे अनसुना कर देते हैं, फिर भी यह दिव्य स्वर रुकता नहीं। हर युग, हर कालखंड में यह पुकार गूँजती रही है और आत्माओं को जाग्रत करती रही है।

सतत कालचक्र में, जब भी मानवता अपने पथ से विचलित हुई है, जब भी अधर्म और अज्ञान की छाया गहराई है; तब-तब किसी-न-किसी महामानव ने जागरण की यह ज्योति जलाई है। विश्वात्मा ने अपने प्रेरणास्रोतों के माध्यम से यह उद्घोष अनेकों बार कराया है—**'जागो, उठो और तब तक न रुको, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।'**

यह केवल शब्द नहीं, आत्मा की पुकार है—जो प्रत्येक जीव को उसके भीतर विद्यमान दिव्यता की याद दिलाती है। हमारे भीतर अमिट शक्तियाँ, अनंत संभावनाएँ और दिव्य क्षमताएँ सुप्त अवस्था में विद्यमान हैं।

जब इन क्षमताओं का विकास होता है, जब हम उन्हें सही दिशा में लगाते हैं—तब जीवन एक नवीन अर्थ प्राप्त करता है। तब हमारे भीतर आनंद, प्रेरणा और उद्देश्य का आलोक प्रकट होता है। यही आत्मिक विकास है, जो हमें अज्ञान-से-ज्ञान, अंधकार-से-प्रकाश और जड़ता-से-जागरण की ओर ले जाता है।

प्रभा के उदय होते ही अंधकार स्वयं हट जाता है—यह प्रकृति का सनातन नियम है। जब आत्मा का प्रकाश भीतर जाग्रत होता है, तब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने लगता है। उसी आलोक में वह कर्म करता है और समाज, राष्ट्र एवं समग्र विश्व के लिए उपयोगी बनता है। यही भीतर से बाहर की यात्रा है। स्व के उत्थान से लोक के कल्याण तक।

**अतः हे जाग्रत आत्माओ!**

**उठो! जागो और विकास करो।**

अपने भीतर के प्रकाश को जानो, पहचानो और उस आलोक को समाज में, राष्ट्र में और संपूर्ण विश्व में फैलाओ। यही सच्चा आत्मविज्ञान है, यही जीवन का परम उद्देश्य है। ❐

---

**इन दिनों स्रष्टा की अदम्य और प्रचंड अभिलाषा एक ही है कि सड़ी दुनिया को बदलने में, उसके लिए कायाकल्प जैसा नया सुयोग बनाया जाए। यही है इक्कीसवीं सदी बनाम उज्ज्वल भविष्य। यही है मनुष्य में देवत्व का उदय। प्रतिभा परिष्कार का महा अभियान। इसी को लोग विचार क्रांति की लाल मशाल का प्रज्वलन भी कहते हैं।** —***परमपूज्य गुरुदेव***

---

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

# कर्मयोग की सर्वसुलभ साधना

'कर्म' आमतौर पर उन कार्यों को माना जाता है, जो शरीर से किए जाते हैं और जिनका उद्देश्य किसी विशेष फल की प्राप्ति होता है। इसके लिए प्रयास, साधन, पुरस्कार आदि निर्धारित होते हैं। परंतु वास्तविक अर्थों में 'कर्म' एक व्यापक और गहरा विषय है। यह जीवन का दूसरा नाम है। इसका मूल है—विचार। यदि विचार निष्कलुष, निस्स्वार्थ और सेवाभाव से युक्त हों तो उनके परिणाम भी श्रेष्ठ होंगे। जब तक विचारों की दिशा नहीं सुधरती, तब तक कर्मों में परिष्कार संभव नहीं।

कई बार हम देखते हैं कि एक ही परिस्थिति में कुछ लोग श्रेष्ठ निर्णय लेते हैं, जबकि कुछ लोग भ्रमित हो जाते हैं। इसका कारण है- विचारों की स्पष्टता का अभाव। जिस प्रकार दृष्टि साफ न हो तो दृश्य धुँधले दिखते हैं, उसी तरह विकृत विचारों से प्रेरित कर्म भी भ्रमित करने वाले होते हैं। इसलिए सत्संग, स्वाध्याय और आत्ममंथन के द्वारा विचारों की शुद्धता परम आवश्यक है।

जीवन में सही दिशा देने वाले विचार ही सच्चे संकल्प का आधार होते हैं। इन विचारों पर दृढ़ निष्ठा ही साधना है। विचार यदि सही हों तो व्यक्ति कर्मयोगी बनता है। गलत विचारों पर आधारित कर्म, चाहे कितने ही परिश्रमी हों, अंततः अधोगति की ओर ले जाते हैं।

प्रेरणा से शरीर एवं मन की उत्कृष्ट क्षमताएँ विकसित होती हैं। यदि मन में स्पष्ट और सकारात्मक विचार हों, तो शरीर भी उसी अनुरूप कार्य करता है।

यही कारण है कि विचार, वातावरण, संगति, उपासना और दिनचर्या का जीवन पर गहरा प्रभाव होता है। जीवन को श्रेष्ठ बनाना हो तो विचारों को श्रेष्ठ बनाना ही होगा। विचार यदि सेवा, परोपकार और आत्मकल्याण की दिशा में हों, तो उनमें एक अपूर्व शक्ति होती है।

तभी तो निस्स्वार्थ सेवा करने वाले व्यक्तियों का जीवन स्वयं में एक प्रेरणा बन जाता है। उनके जीवन में कर्म, ज्ञान और भक्ति का अद्भुत संगम होता है।

ध्यान, प्रार्थना और सत्संग के द्वारा जब विचारों में दिव्यता आती है, तो कर्म स्वाभाविक रूप से उत्कृष्ट बनते हैं। यह साधना का सरलतम मार्ग है—सर्वसुलभ, सर्वहितकारी और आत्मसंपूर्ण। उपासना एक अनुभव है, जीवंत चेतना है। इसका उद्देश्य यही है कि साधक की मानसिक और भावनात्मक ऊर्जा उच्चस्तर तक उठे और उसका जीवन ईश्वरमय बने।

यदि उपासना में यह गहराई न आए तो वह केवल रस्म अदायगी बनकर रह जाती है। सच्ची उपासना वह है, जो अंतःकरण को निर्मल बनाए, विचारों को उज्ज्वल बनाए और व्यवहार को सद्भावनापूर्ण बनाए। यदि विचारों में निरंतर शुद्धता नहीं आती तो उपासना का प्रभाव स्थायी नहीं हो पाता। ऐसे में साधक के जीवन में सुधार कम और द्वंद्व अधिक बढ़ते हैं।

यह आवश्यक है कि विचार, भावना और कर्म तीनों की एकरूपता हो। यही समन्वय कर्मयोग की पूर्णता है। कई बार लोग यह सोचते हैं कि

उपासना का समय अलग हो और कर्म का समय अलग, लेकिन सच्चा साधक तो प्रत्येक कार्य में उपासना की अनुभूति करता है।

वह यह जानता है कि सेवा भी उपासना का ही एक रूप है। वह अपने कर्म को यज्ञ-भावना से करता है—न कोई अपेक्षा, न कोई स्वार्थ, बस एक अर्पण भाव।

परिस्थितियों की अनुकूलता या प्रतिकूलता उसके कर्म को प्रभावित नहीं करती। वह हर हाल में अपने कर्त्तव्य को निष्ठा से निभाता है। उसके लिए कार्य ही पूजा है। वह जानता है कि जो कुछ वह कर रहा है वह समाज, राष्ट्र और परमेश्वर के लिए है।

सच्चा कर्मयोगी कभी भागता नहीं, वह जीवन की कठिनाइयों का सामना करते हुए भी मुस्कराता है, क्योंकि उसे पता होता है कि उसका जीवन एक उद्देश्यपूर्ण तपस्या है। वह जानता है कि आत्मोन्नति सेवा से ही संभव है और इसके लिए प्रयत्नशील रहना ही उसकी साधना है। वह अपनी दिनचर्या, भोजन, विचार और संबंधों तक में साधना का भाव रखता है।

उसके लिए शरीर, मन और आत्मा की समरसता ही आराधना है। वह स्वयं को ईश्वर की ऊर्जा का माध्यम मानकर कार्य करता है। चरित्र-निर्माण ही कर्मयोग की सबसे महत्त्वपूर्ण कसौटी है। बिना चरित्र के सेवा में स्थायित्व नहीं आता। चरित्र वह नींव है, जिस पर समर्पण, साहस और सहनशीलता का भवन खड़ा होता है।

चरित्रवान व्यक्ति ही अपने जीवन को एक आदर्श उदाहरण बना सकता है। वह न केवल अपने लिए, बल्कि समाज के लिए प्रेरणा बनता है। चरित्र और सेवा के संगम से ही सच्चा कर्मयोगी जन्म लेता है, जो न थकता है, न टूटता है, न डिगता है। जब आत्मा, भावनाएँ, संकल्प, विचार और व्यवहार पूर्णतः शुद्ध होते हैं तो भाषा भी मधुर और हृदयस्पर्शी बन जाती है।

यही उच्चता तब जीवन के प्रत्येक कार्य में परिलक्षित होती है। वास्तव में कर्मयोग का सर्वोच्च स्तर वही है, जहाँ व्यक्ति की हर क्रिया में सहजता, करुणा और दिव्यता झलकती हो। कर्मयोग की साधना केवल बाहरी गतिविधियों तक सीमित नहीं रहती।

यह आत्मा की आंतरिक सुंदरता को प्रकट करने की प्रक्रिया है। यदि यह भाव जाग जाए कि 'मैं जो कर रहा हूँ, वह ईश्वर के लिए है' तो हर कार्य साधना बन जाता है। जीवन-साधना में संयम, नियम, संतुलन और सात्त्विकता अनिवार्य हैं। इसके बिना श्रेष्ठ विचार टिक नहीं सकते। संयमित जीवनशैली ही श्रेष्ठ कर्म की नींव बनती है।

शरीर को स्वस्थ, मन को शांत और आत्मा को जाग्रत रखने के लिए नियमित दिनचर्या और संयमित खान-पान अत्यंत आवश्यक हैं। कर्मयोग का उद्देश्य केवल समाज-सेवा नहीं, आत्मविकास भी है। सेवा और साधना जब समरस हों, तब ही जीवन सार्थक बनता है। यह साधना निरंतर अभ्यास और आत्मनिरीक्षण से ही संभव होती है।

मन, वाणी और शरीर के प्रत्येक कार्य में पवित्रता, मर्यादा और श्रद्धा का होना आवश्यक है। चरित्र और विचार की सुंदरता बिना आत्मसंयम के संभव नहीं।

यदि हमारा शरीर स्थिर नहीं, मन चंचल है, वाणी असंयमित है—तो कोई भी साधना स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ सकती। इसलिए दिनचर्या का नियमन, ध्यान, स्वाध्याय और मौन जैसे अभ्यास-कर्मयोगी जीवन के आवश्यक अंग हैं।

आज की भाग-दौड़ भरी दुनिया में बहुत से लोग अपने लिए समय नहीं निकाल पाते, परंतु यह आवश्यक है कि हम प्रतिदिन कुछ समय आत्मचिंतन, मौन, सेवा और साधना के लिए

निश्चित करें। यही जीवन में संतुलन लाता है और आंतरिक शक्ति को जाग्रत करता है। भारत की ऋषि परंपरा ने सदा यही सिखाया है कि जीवन केवल भोग के लिए नहीं, वरन योग के लिए है।

यदि हर कार्य को ईश्वरार्पण की भावना से किया जाए तो हमारा संपूर्ण जीवन ही उपासना बन जाता है। हर जीवन साधना का एक लक्ष्य होता है—निरंतर जागरूक रहना और उसे अपने कर्मों में व्यक्त करना।

कर्मयोग का अंतिम और सबसे उच्च चरण यह है कि हर परिस्थिति में हमारी स्थिरता बनी रहे और उद्देश्य स्पष्ट हो। उत्सवधर्मिता केवल बाहरी क्रिया नहीं, वह एक निरंतर स्थिति है, जो संयम, सेवा और सद्भाव से जुड़ी होती है।

हम जो भी कार्य करें, वह केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, बल्कि समष्टि कल्याण की भावना से करें। परिवार, समाज, राष्ट्र और समूची सृष्टि के साथ जुड़कर जो कार्य किया जाए, वही सच्चा कर्मयोग है।

कर्म की इस दशा में हम अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख से ऊपर उठ जाते हैं। हमारे कर्म में ईश्वर की प्रेरणा और आत्मा की अनुभूति झलकनी चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि हम सतत आत्मनिरीक्षण करें—कहीं हमारे विचार, वाणी या व्यवहार में स्वार्थ तो नहीं? कहीं हमारा मन प्रमाद में फिसल तो नहीं रहा? यदि आत्मनिरीक्षण की यह आदत न हो, तो साधना मात्र बाह्य प्रदर्शन बनकर रह जाएगी।

अतः कर्मयोगी को चाहिए कि वह हर दिन के कार्यों में अपने भीतर उतरकर यह देखे कि उसकी प्रवृत्तियों में सच्चाई, सेवा और तप का भाव है या नहीं?

कर्म में प्रत्येक क्षण को साधना बनाना तभी संभव है जब हम उसे सजगता, अनुशासन और निरंतर प्रेरणा से जोड़ें।

ध्यान और आत्मिक अनुशासन जीवन का अंग बन जाएँ तो जीवन में शुद्धता, सफलता और प्रसन्नता का स्थायी संचार हो सकता है। सच्चे कर्मयोगी की पहचान यही है कि वह किसी दिखावे या वाहवाही के लिए नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि और जनकल्याण के लिए कार्य करता है। उसका मन निर्मल, वाणी मधुर और जीवन सरल होता है। वह हर किसी से मधुरता, करुणा और प्रेमपूर्वक व्यवहार करता है।

उसके लिए साधना का कोई विशिष्ट समय नहीं—हर कार्य, हर क्षण, हर साँस में वह साधना को जीता है। चरित्र, विवेक और प्रेम उसके आभूषण होते हैं। वह यह जानता है कि दूसरों को बदलने से पहले स्वयं को बदलना होगा। इसीलिए वह अपनी ऊर्जा को दूसरों की आलोचना में नहीं, स्वयं को उत्कृष्ट बनाने में लगाता है।

यह साधना केवल मठों या जंगलों में नहीं, परिवार, कार्यक्षेत्र, समाज और सेवा में रहकर भी की जा सकती है। कर्मयोग का वास्तविक अर्थ ही है—हर क्षण को जागरूकता से जीना और हर कार्य को पूजा बनाना। □

**जिसकी जैसी श्रद्धा है, वह वैसा ही है, जो अपने को जैसा मानता है, वह वैसा ही बन जाता है। यदि अपने को तुच्छ और हेय समझते रहा जाए तो व्यक्तित्व उसी ढाँचे में ढल जाएगा। जिसने अपने अंदर महानता अर्जित की है, उसे अपना अस्तित्व मानवीय गरिमा से ओत-प्रोत दिखाई पड़ेगा।** —*परमपूज्य गुरुदेव*

# वेदों में नारी का वैभव

वैदिक काल देवी-उपासना से भरा-पूरा है। सामाजिक विज्ञान की दृष्टि से यह काल स्त्री आदर का है। यों देवशक्तियाँ स्त्रीलिंग या पुल्लिंग नहीं होतीं, लेकिन समाज अपने श्रद्धाभाव के चलते देवों को भी माँ या पिता कहता है। ऋग्वैदिक मंत्रों के द्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेद में प्रत्येक सूक्त पर द्रष्टा ऋषियों के नाम लिखे जाते हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेद में 25 ऋषिकाओं के नाम हैं। वे 422 मंत्रों की द्रष्टा हैं। वागाम्भृणी, घोषा, अपाला, उर्वशी, इंद्राणी, शची, रोमशा, श्रद्धा, कामायनी, वैवस्वती आदि प्रख्यात ऋषिकाएँ हैं।

ऋग्वेद में लोपामुद्रा का कथन सारगर्भित है। सत्य की साधना करने वाले देवतुल्य ऋषियों ने भी संतति-प्रवाह चलाया है। वे भी जीवन के अंत तक ब्रह्मचारी ही नहीं रहे, उनकी भी पत्नियाँ थीं। यहाँ गृहस्थ आश्रम की महत्ता है, संतति-प्रवाह न रोकने की स्थापना है। एक मंत्र अगस्त्य का है। ''हमने जीवन की तप-साधनाओं पर विजय पाई है, हम दंपती अब संतति-प्रवाह में लगेंगे।'' यहाँ लोपमुद्रा ऋषिका हैं, वे अगस्त्य ऋषि की पत्नी हैं।

प्रत्यक्ष रूप में यह वार्त्ता व्यक्तिगत दिखाई पड़ती है, लेकिन इसकी स्थापनाएँ दिशाबोधक हैं। लोपामुद्रा का जोर गृहस्थाश्रम की दृढ़ता पर है, अगस्त्य का जोर तप-साधना पर, लेकिन लोपामुद्रा-अगस्त्य का समन्वय प्रीतिकर है। वैदिक स्त्री कमजोर एवं शोषक नहीं है। वह खुलकर बात करती है। लोपामुद्रा अपने ऋषि पति से भी संवाद करते समय खुलकर बोलती है। ऐसी ही एक ऋषिका है—इंद्राणी। इंद्राणी का कथन है कि मैं मूर्द्धन्य हूँ और उग्र वक्ता हूँ।

इंद्राणी अथर्ववेद की भी मंत्रद्रष्टा ऋषिका हैं। यहाँ उनकी उद्घोषणा वैदिक काल से भी पहले के नारी-सम्मान का यथार्थ दर्शन कराती है। कहती हैं—'प्राचीनकाल से ही नारी यज्ञों और महोत्सवों में भाग लेती रही है।' ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में सभा, समितियाँ हैं। अथर्ववेद में सभा और समिति को प्रजापति की पुत्रियाँ कहा गया है। सभा और समिति जैसी आदर्श संस्थाएँ पुत्रियाँ हैं, पुत्र नहीं। स्त्रियाँ गुणों की खान हैं।

ऋग्वेद में ऋषिका रोमशा कहती है—'जिस प्रकार गंधार की भेड़ रोमों से भरी होती है, उसी प्रकार मैं गुणों से भरपूर हूँ।' ऋग्वेद में महिलाएँ केवल ऋषिकाएँ ही नहीं हैं, यहाँ अनेक वीर महिलाओं के वर्णन भी हैं। विश्पला का पैर युद्ध में टूट गया था, अश्विनी देवी ने उसके कृत्रिम पैर लगाया। ऐसी ही एक योद्धा हैं मुद्गलानी। वे रथारूढ़ होकर युद्ध जीतीं, उस समय उनके वस्त्रों को वायुदेव ने सँभाला।

ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषद् साहित्य में स्त्री विद्वानों के अनंत प्रसंग हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का सारगर्भित वाद-विवाद है। यहाँ गार्गी और याज्ञवल्क्य का प्रश्नोत्तर पठनीय है। गार्गी यहाँ सभा-नेत्री हैं। वैदिक स्त्री स्वाधीन है। वह पुरुष के सामने स्वाभिमानी है। वह मंत्रद्रष्टा ऋषिका है।

वह युद्ध में वीरव्रती है। वह यज्ञ-कार्य में बराबर की भागीदार है। वह देवोपासक है। बावजूद

इसके वह मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती। ऋग्वैदिक काल की स्त्री की स्थिति सम्मानजनक है। वह आदरणीय है।

वैदिक काल की यही परंपरा पौराणिक काल तक अविच्छिन्न है। शिव-पार्वती में पार्वती समतुल्य रूप में आदरणीय हैं। सीता-राम में सीता माता हैं। श्रीराम कौशल्या, सुमित्रा के साथ कैकेई को भी आदरणीय मानते हैं। पुराणकाल की दुर्गा सप्तशती की समूची कथा ही देवी की पराक्रम-गाथा है।

**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।**

नारी सम्मान की उक्त उद्घोषणा विश्व समुदाय को भारतीय संस्कृति की ही देन है। भारतीय वाङ्मय में हजारों नारी पात्र हैं, जो उल्लेखनीय और पठनीय हैं। भारत मातृशक्ति आराधक राष्ट्र है। यहाँ गंगा माता है, गाय माता है, सिंधु माता है। वाणी माता है, नदियाँ माता हैं और वृक्ष भी माता हैं।

सृष्टि का कण-कण यहाँ माता है—

**या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।**

भारत शब्द पुरुषवाचक है, लेकिन भारतीय अनुभूति में भारत भी माता है, पृथ्वी भी माता है। सारी विद्याएँ माता हैं और समूची स्त्री सृष्टि माता है।

वैदिक काल की इस वैभवशाली परंपरा के प्रादुर्भाव की आज आवश्यकता है। आज नारी को भोग्या मान लिया गया है और उसका शोषण किया जाता है। जब तक इस मानसिकता को दूर नहीं किया जाएगा, तब तक समाज का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है। आने वाला समय संवेदना के विस्तार का है, जिसे केवल नारी में विद्यमान संवेदना से ही साकार किया जा सकेगा। ❑

---

**वन में खड़े एक वृक्ष के साथ लिपटी एक लता भी धीरे-धीरे वृक्ष के बराबर हो गई। वृक्ष का आश्रय लेकर उसने भी फलना-फूलना आरंभ कर दिया। बेल को फलते-फूलते देखकर वृक्ष को अहंकार हो गया कि मैं न होता तो लता का अस्तित्व ही न होता। वह लता को धमकाते हुए बोला— "ओ बेल! चुपचाप मेरा कहना मानकर, मैं जो कह रहा हूँ वह किया कर, नहीं तो धक्के मारकर भगा दूँगा।"**

**पेड़ का प्रलाप जारी था कि दो पथिक वहाँ से निकले। एक बोला— "अरे भाई! जरा देखो तो, इस पर कैसी सुंदर लता पुष्पित हो रही है, जिससे यह वृक्ष भी सुंदर दिखाई देता है। आओ इसके नीचे थोड़ी देर विश्राम करें।"**

**अपना महत्त्व लता के साथ है, यह जानकर वृक्ष का अभिमान भी नष्ट हो गया। साथ-साथ रहने से ही सबकी प्रगति सुनिश्चित होती है।**

पर्व विशेष—होली पर्व

# होली में जीवन की अशुद्धियाँ दहन हों

वसंत ऋतु में मनाया जाने वाला होली पर्व महत्त्वपूर्ण त्योहार है। होली पर्व हिंदू पंचांग के अनुसार फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। रंगों का त्योहार कहा जाने वाला यह पर्व पारंपरिक रूप से दो दिन मनाया जाता है। यह त्योहार कई अन्य देशों में जहाँ हिंदू रहते हैं—वहाँ भी धूम-धाम के साथ मनाया जाता है।

पहले दिन को होलिका जलाई जाती है, जिसे होलिका दहन भी कहते हैं। दूसरे दिन, जिसे प्रमुखतः धुलेंडी व धुरड्डी, धूरखेल या धूलिवंदन आदि नामों से पुकारते हैं—उस दिन लोग एक-दूसरे पर रंग, अबीर-गुलाल इत्यादि फेंकते हैं, ढोल बजाकर होली के गीत गाए जाते हैं और घर-घर जाकर लोगों को रंग लगाया जाता है।

ऐसा माना जाता है कि होली के दिन लोग पुरानी कटुता को भूलकर गले मिलते हैं और फिर से दोस्त बन जाते हैं। एकदूसरे को रँगने और गाने-बजाने का दौर दोपहर तक चलता है। इसके बाद स्नान करके, विश्राम करने के बाद, नए कपड़े पहनकर, शाम को लोग एकदूसरे के घर मिलने जाते हैं, गले मिलते हैं और मिठाइयाँ खिलाते हैं।

राग-रंग का यह लोकप्रिय पर्व वसंत का संदेशवाहक भी है। राग अर्थात संगीत और रंग तो इसके प्रमुख अंग हैं ही, पर इनको उत्कर्ष तक पहुँचाने वाली प्रकृति भी इस समय रंग-बिरंगे यौवन के साथ अपनी चरम अवस्था पर होती है। फाल्गुन माह में मनाए जाने के कारण इसे फाल्गुनी भी कहते हैं। होली का त्योहार वसंत पंचमी से ही आरंभ हो जाता है। उसी दिन पहली बार गुलाल उड़ाया जाता है।

इस दिन से फाग और धमार का गान प्रारंभ हो जाता है। खेतों में सरसों खिल उठती है। बाग-बगीचों में फूलों की आकर्षक छटा छा जाती है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और मनुष्य सब उल्लास से परिपूर्ण हो जाते हैं। खेतों में गेहूँ की बालियाँ इठलाने लगती हैं।

बच्चे-बूढ़े, सभी व्यक्ति सब कुछ संकोच और रूढ़ियाँ भूलकर ढोलक-झाँझ-मंजीरों की धुन के साथ नृत्य-संगीत व रंगों में डूब जाते हैं। चारों तरफ रंगों की फुहार फूट पड़ती है। गुझिया होली का प्रमुख पकवान है, जो कि मावे (खोया) और मैदे से बनता है और मेवों से युक्त होता है।

इस दिन कांजी के बड़े खाने व खिलाने का भी रिवाज है। नए कपड़े पहनकर होली की शाम को लोग एकदूसरे के घर मिलने जाते हैं, जहाँ उनका स्वागत गुझिया, नमकीन व ठंढाई से किया जाता है। होली के दिन आम्रमंजरी तथा चंदन को मिलाकर खाने का बड़ा माहात्म्य है।

होली भारत का अत्यंत प्राचीन पर्व है, जो होली, होलिका या होलाका नाम से मनाया जाता है। वसंत ऋतु में हर्षोल्लास के साथ मनाए जाने के कारण इसे वसंतोत्सव और काम महोत्सव भी कहा गया है।

इतिहासकारों का मानना है कि आर्यों में भी इस पर्व का प्रचलन था, लेकिन अधिकतर यह पूर्वी भारत में ही मनाया जाता था। भारत के कवियों ने अपनी रचनाओं में उल्लेख किया है कि होलिकोत्सव केवल हिंदू ही नहीं, मुसलमान भी मनाते हैं। इस विषय में सबसे प्रामाणिक-ऐतिहासिक संदर्भ मुगलकाल के हैं।

इसके अतिरिक्त प्राचीन चित्रों, भित्तिचित्रों और मंदिरों की दीवारों पर इस उत्सव के चित्र मिलते हैं। विजयनगर की राजधानी हंपी के 16वीं शताब्दी के एक चित्रफलक पर होली का आनंददायक चित्र उकेरा गया है। इस चित्र में राजकुमारों और राजकुमारियों को दासियों सहित रंग और पिचकारी के साथ राजदंपती को होली के रंग में रँगते हुए दिखाया गया है। 16वीं शताब्दी की अहमदनगर की एक चित्र की आकृति का विषय भी वसंत रागिनी का है।

इस चित्र में राजपरिवार के एक दंपती को बगीचे में झूला झूलते हुए दिखाया गया है। साथ में अनेक सेविकाएँ नृत्य-गीत व रंग खेलने में व्यस्त हैं। वे एकदूसरे पर पिचकारियों से रंग डाल रहे हैं। मध्यकालीन भारतीय मंदिरों के भित्तिचित्रों और आकृतियों में होली के सजीव चित्र देखे जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए, इसमें 17वीं शताब्दी की मेवाड़ की एक कलाकृति में महाराणा को अपने दरबारियों के साथ चित्रित किया गया है। शासक कुछ लोगों को उपहार दे रहे हैं, नृत्यांगना नृत्य कर रही हैं और इस सबके मध्य रंग का एक कुंड रखा हुआ है। बूँदी से प्राप्त एक लघुचित्र में राजा को हाथी दाँत के सिंहासन पर बैठा दिखाया गया है, जिसके गालों पर महिलाएँ गुलाल मल रही हैं।

होली के पर्व से अनेक कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। इनमें से सबसे प्रसिद्ध कहानी प्रह्लाद की है। माना जाता है कि प्राचीनकाल में हिरण्यकशिपु नाम का एक अत्यंत बलशाली असुर था। अपने बल के दर्प में वह स्वयं को ही ईश्वर मानने लगा था। उसने अपने राज्य में ईश्वर का नाम लेने पर ही पाबंदी लगा दी थी। हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद ईश्वरभक्त था।

प्रह्लाद की ईश्वरभक्ति से क्रुद्ध होकर हिरण्यकशिपु ने उसे अनेक कठोर दंड दिए, परंतु उसने ईश्वर की भक्ति का मार्ग न छोड़ा। हिरण्यकशिपु की बहन होलिका को वरदान प्राप्त था कि वह आग में भस्म नहीं हो सकती। हिरण्यकशिपु ने आदेश दिया कि होलिका प्रह्लाद को गोद में लेकर आग में बैठे। आग में बैठने पर होलिका तो जल गई, पर प्रह्लाद बच गया।

ईश्वरभक्त प्रह्लाद की याद में इस दिन होली जलाई जाती है। प्रतीक रूप से यह भी माना जाता है कि प्रह्लाद का अर्थ आनंद होता है। वैर और उत्पीड़न की प्रतीक होलिका (जलाने की लकड़ी) जलती है और प्रेम तथा उल्लास का प्रतीक प्रह्लाद (आनंद) अक्षुण्ण रहता है। प्रह्लाद की कथा के अतिरिक्त यह पर्व राक्षसी ढुंढी, राधा-कृष्ण के रास और कामदेव के पुनर्जन्म से भी जुड़ा हुआ है।

कुछ लोगों का मानना है कि होली में रंग लगाकर, नाच-गाकर लोग शिव के गणों का वेश धारण करते हैं तथा शिव की बरात का दृश्य बनाते हैं। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि भगवान श्रीकृष्ण ने इस दिन पूतना नामक राक्षसी का वध किया था। इसी खुशी में गोपियों और ग्वालों ने रासलीला की और रंग खेला था। होली के पर्व की तरह इसकी परंपराएँ भी अत्यंत प्राचीन हैं और इनका स्वरूप और उद्देश्य समय के साथ बदलता रहा है।

प्राचीनकाल में यह विवाहित महिलाओं द्वारा परिवार की सुख-समृद्धि के लिए मनाया जाता था और उस समय पूर्णचंद्र की पूजा करने की परंपरा थी। वैदिक काल में इस पर्व को नवान्नैष्टि यज्ञ कहा जाता था। उस समय खेत के अधपके अन्न को यज्ञ में दान करके प्रसाद लेने का विधान

समाज में व्याप्त था। अन्न को होला कहते हैं, इसी से इसका नाम होलिकोत्सव पड़ा।

भारतीय ज्योतिष के अनुसार चैत्र शुदी प्रतिपदा के दिन से नववर्ष का भी आरंभ माना जाता है। इस उत्सव के बाद ही चैत्र महीने का आरंभ होता है। अतः यह पर्व नवसंवत्सर के आरंभ तथा वसंतागमन का प्रतीक भी है।

इसी दिन प्रथम पुरुष मनु का जन्म हुआ था। इस कारण इसे मन्वादितिथि कहते हैं। होली का पहला झंडा या डंडा गाड़ना होता है। इसे किसी सार्वजनिक स्थल पर या घर के अहाते में गाड़ा जाता है। इसके पास ही होलिका की अग्नि इकट्ठी की जाती है। होली से काफी दिन पहले से ही यह सब तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। पर्व का पहला दिन होलिका दहन का दिन कहलाता है।

इस दिन चौराहों पर व जहाँ कहीं अग्नि के लिए लकड़ी एकत्र की गई होती है, वहाँ होली जलाई जाती है। इसमें लकड़ियाँ और उपले प्रमुख रूप से होते हैं। कई स्थलों पर होलिका में भरभोलिए जलाने की भी परंपरा है। भरभोलिए गाय के गोबर से बने ऐसे उपले होते हैं जिनके बीच में छेद होता है। इस छेद में मूँज की रस्सी डालकर माला बनाई जाती है। एक माला में सात भरभोलिए होते हैं। होली में आग लगाने से पहले इस माला को भाइयों के सिर के ऊपर से सात बार घुमाकर फेंक दिया जाता है।

रात को होलिका दहन के समय यह माला होलिका के साथ जला दी जाती है। इसका यह आशय है कि होली के साथ भाइयों पर लगी बुरी नजर भी जल जाए। लकड़ियों व उपलों से बनी इस होली का दोपहर से ही विधिवत् पूजन प्रारंभ हो जाता है। घरों में बने पकवानों का यहाँ भोग लगाया जाता है। दिन ढलने पर ज्योतिषियों द्वारा निकाले मुहूर्त पर होली का दहन किया जाता है। इस आग में नई फसल की गेहूँ की बालियों और चने के होले को भी भूना जाता है।

होलिका का दहन समाज की समस्त बुराइयों के अंत का प्रतीक है। यह बुराइयों पर अच्छाइयों की विजय का सूचक है। गाँवों में लोग देर रात तक होली के गीत गाते हैं तथा नाचते हैं।

होली का अगला दिन धूलिवंदन कहलाता है। इस दिन लोग रंगों से खेलते हैं। सुबह होते ही सब अपने मित्रों और रिश्तेदारों से मिलने निकल पड़ते हैं। गुलाल और रंगों से सबका स्वागत किया जाता है। लोग अपनी ईर्ष्या-द्वेष की भावना भुलाकर प्रेमपूर्वक गले मिलते हैं तथा एक-दूसरे को रंग लगाते हैं। इस दिन जगह-जगह टोलियाँ रंग-बिरंगे कपड़े पहनकर नाचती-गाती दिखाई पड़ती हैं। बच्चे पिचकारियों से रंग छोड़कर अपना मनोरंजन करते हैं। सारा समाज होली के रंग में रँगकर एक-सा बन जाता है।

रंग खेलने के बाद देर दोपहर तक लोग नहाते हैं और शाम को नए वस्त्र पहनकर सबसे मिलने जाते हैं। प्रीतिभोज तथा गाने-बजाने के कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं। होली के दिन घरों में खीर, पूरी और पूए आदि विभिन्न व्यंजन (खाद्य पदार्थ) पकाए जाते हैं। इस अवसर पर अनेक मिठाइयाँ भी बनाई जाती हैं, जिनमें गुझियों का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। बेसन के सेब और दहीबड़े भी सामान्य रूप से उत्तर प्रदेश में रहने वाले हर परिवार में बनाए व खिलाए जाते हैं। काँजी, भाँग और ठंढाई इस पर्व के विशेष पेय होते हैं, पर ये कुछ ही लोगों को भाते हैं।

भारत में होली का उत्सव अलग-अलग प्रदेशों में भिन्नता के साथ मनाया जाता है। ब्रज की होली आज भी सारे देश के आकर्षण का केंद्रबिंदु होती

है। बरसाने की लठामार होली काफी प्रसिद्ध है। इसमें पुरुष महिलाओं पर रंग डालते हैं और महिलाएँ उन्हें लाठियों तथा कपड़े के बनाए गए कोड़ों से मारती हैं।

इसी प्रकार मथुरा और वृंदावन में भी 15 दिनों तक होली का पर्व मनाया जाता है। कुमाऊँ की गीत-बैठकी में शास्त्रीय संगीत की गोष्ठियाँ होती हैं। यह सब होली के कई दिनों पहले शुरू हो जाता है।

हरियाणा की धुलंडी में भाभी द्वारा देवर को सताए जाने की प्रथा है। बंगाल की दोल जात्रा चैतन्य महाप्रभु के जन्मदिन के रूप में मनाई जाती है। जलूस निकलते हैं और गाना-बजाना भी साथ रहता है। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र की रंग पंचमी में सूखा गुलाल खेलने, गोवा के शिमगो में जलूस निकालने के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन तथा पंजाब के होला मुहल्ला में सिक्खों द्वारा शक्ति प्रदर्शन की परंपरा है।

तमिलनाडु की कमन पोडिगई मुख्य रूप से कामदेव की कथा पर आधारित वसंतोत्सव है, जबकि मणिपुर के याओसांग में योंगसांग उस नन्ही झोंपड़ी का नाम है, जो पूर्णिमा के दिन प्रत्येक नगर-ग्राम में नदी अथवा सरोवर के तट पर बनाई जाती है। दक्षिण गुजरात के आदिवासियों के लिए होली सबसे बड़ा पर्व है। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ की होली में लोकगीतों की अद्भुत परंपरा है और मध्य प्रदेश के मालवा अंचल के आदिवासी इलाकों में भी इसे बेहद धूम-धाम से मनाया जाता है। भगोरिया जो होली का ही एक रूप है।

बिहार का फगुआ जमकर मौज-मस्ती करने का पर्व है और नेपाल की होली में इस पर धार्मिक व सांस्कृतिक रंग दिखाई देता है।

इसी प्रकार विभिन्न देशों में बसे प्रवासियों तथा धार्मिक संस्थाओं और मंदिरों में अलग-अलग प्रकार से होली के शृंगार व उत्सव मनाने की परंपरा है।

इस बार होली आई है तो होलिका-दहन घर के आँगन में, गलियों, चौबारों, चौराहों पर तो होगा ही। इसे होना भी चाहिए, साथ ही इसकी बढ़ी हुई ज्वालाओं में हम सबके तन-मन-जीवन की अशुद्धियाँ भी दहन होनी चाहिए। □

---

**एक दिन पानी से भरे कलश के ऊपर रखी कटोरी कलश से बोली— "कलश! ये पक्षपात क्यों? जो भी बरतन तुम्हारे पास आता है, तुम उसको पानी से भर देते हो, पर मुझ पर कोई अनुग्रह नहीं करते; जबकि मैं हमेशा तुम्हारे साथ मौजूद हूँ।"**

**कलश ने उत्तर दिया—"बहन! जो मेरे पास ग्रहण करने के लिए आता है, मैं उसे संतुष्ट करके भेजता हूँ, परंतु तुम अभिमान के साथ मेरे सिर पर चढ़ी रहती हो तो मैं तुम्हारी क्या मदद कर पाऊँगा? तुम अभिमान छोड़ो, अपनी पात्रता सिद्ध करो तो मैं तुम्हें अभी भर दूँ।" वस्तुतः पूर्णता की प्राप्ति पात्रता होने पर ही सिद्ध होती है।**

# जीवनमूल्य की श्रेष्ठता

आज मूल्यहीनता को लेकर समाज के हर वर्ग में चिंता व्यक्त की जा रही है। मूल्य एक ऐसे प्रेरक तत्त्व के रूप में समझे जाते हैं, जो हमें विभिन्न प्रकार के कार्यों को करने में प्रवृत्त करते हैं और सामाजिक चेतना को जगाए रखते हैं।

भिन्न संस्कृतियों में 'मूल्य' को अलग-अलग नजरिए से देखा गया है। भारतीय संस्कृति के आधार पर मूल्य को देखने की कोशिश करेंगे तो सबसे पहले धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- ये चार व्यापक मूल्य उभरकर आते हैं। इसमें पहला और केंद्रीय मूल्य है 'धर्म'।

धर्म को धारण करने या जीने के साथ जोड़ा गया है। धीरज, क्षमा, चोरी न करना, पवित्रता, अपने ऊपर नियंत्रण, सत्य और क्रोध न करने आदि व्यवहारों को धर्म का लक्षण बताया गया है। ऐसे और भी कई विचार हैं, जिन्हें लेकर धर्म को परिभाषित किया गया है, जैसे '**अहिंसा परमो धर्मः**' '**आचारः परमो धर्मः।**'

शास्त्रों में कहा गया है कि सत्य ही सबसे बड़ा धर्म है। '**न हि सत्यात् परो धर्मः**' ये सभी वचन हमें अच्छे व्यवहार के लिए प्रेरित करते हैं और सभी मतों में परिगणित हैं। यह भी कहा गया है—जो धारण करने योग्य है, जो करणीय है, वही धर्म है और वही सबसे बड़ा मानव-मूल्य है। यह स्वयं हमें अपने 'स्व' के बारे में ध्यान दिलाता है कि हम स्वयं के बारे में कैसा सोचते हैं और दूसरों के साथ किस तरह जुड़ते हैं और बरताव करते हैं। वस्तुतः कोई भी आदमी इस दुनिया में नितांत अकेला नहीं होता, जीने के क्रम में उसके लिए शेष दुनिया भी काफी महत्त्व रखती है।

सच तो यह है कि हम दूसरों के साथ कैसा बरताव करते हैं, यह इस पर निर्भर करता है कि हम स्वयं अपने बारे में कैसा सोचते हैं, दूसरों को किस रूप में ग्रहण करते हैं और स्वयं को दूसरों से किस तरह जोड़ते हैं। हमारे बनने व बनाने में दूसरों की विशेष भूमिका होती है, पर दूसरों को देखने के हमारे दृष्टिकोण कई तरह के होते हैं।

हम दूसरों को अपनी ही तरह से सोच सकते हैं या फिर और चीजों की तरह ही एक और उपभोग की वस्तु मान सकते हैं। इसीलिए विश्व के प्रमुख विचारक इस अपने आप को या 'स्व' को जानने-समझने पर जोर देते हैं, पर इसका स्वरूप बेहद व्यापक है।

आजकल 'स्व' या 'व्यक्ति' शब्द प्रयोग में चल निकला है, परंतु भारतीय शब्दावली में स्व हेतु यह शब्द नहीं है। इसके स्थान पर 'आत्म' शब्द का प्रयोग किया गया है। दूसरे शब्दों में यह दृष्टि एक विशेष तरह से 'स्व' की बात करती है। इसका मानदंड सीमित स्व के अर्थ में न होकर व्यापक है। इस व्यापक स्व में दूसरे भी शामिल हैं और परिवेश की चीजें भी शामिल हैं।

इसमें मेरा (निज) और पराया (पर) को विभाजित करने वाली जो रेखा है, वह ऐसी छिद्रों वाली (पोरस) होती है, जिसमें से अंदर-बाहर आवागमन संभव होता है। यह अकेले व्यक्ति के विस्तार या अहंकार के अपरिमित संवर्द्धन से नहीं, बल्कि सबके विकास और कल्याण से जुड़ा है। भारतीय सोच में इसीलिए अहंकार को एक समस्या के रूप में देखा गया है और यह माना गया है कि अहंकार एक भ्रम है और अपने अहं को खतम

करके या उसे विसर्जित करते हुए ही समग्र का विकास हो सकता है।

इस तरह के समावेशी स्व में दूसरे को भी प्रस्फुटित और विकसित करने का अवसर बना रहता है। व्यक्ति अविभाज्य इकाई न होकर कई तत्त्वों की संघटना होता है। इस तरह का स्व या आत्म का विचार संबंधों पर बल देता है और एक सीमा तक उन्हीं से परिभाषित होता है और वैधता प्राप्त करता है।

आत्मकेंद्रिकता के खिलाफ व्यापक आत्म के विकास के आधुनिक उदाहरण महात्मा गांधी थे। वे अंदर और बाहर एक रखने के पक्ष में थे। कथनी और करनी में भेद नहीं करते थे। गांधी जी ने 6 अगस्त, 1925 को 'यंग इंडिया' में लिखा था— "मैं इस पृथ्वी पर स्थित किसी भी मनुष्य से घृणा करने की क्षमता नहीं रखता। मैंने 40 वर्षों तक किसी से घृणा नहीं की है। मैं जानता हूँ कि यह एक बहुत बड़ा दावा है। यह मानवता के गुण के बिना संभव नहीं है।"

यह समावेशी 'स्व' का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस स्थिति में एकदूसरे के बीच की सीमा-रेखा टूट जाती है और स्व इतना विस्तृत हो जाता है कि दूसरे भी उसमें समाहित हो जाते हैं, जगत् के कल्याण का भाव आता है, समानता का बोध होता है।

इस दृष्टि से मूल्य की साधना समष्टि के हित की साधना होती है। वह मूल्य ऐसा नहीं हो सकता है, जिसमें मेरा हित हो और दूसरे का अहित हो। इसमें सबके कल्याण की बात होती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना इसी तरह की है। इस विचार में बार-बार इस बात को रेखांकित किया गया है कि धर्म की परिधि में आचरण करने से ही सबका मंगल एवं कल्याण होगा।

मनुष्य के सामाजिक जीवन में मूल्यों का बहुत अधिक योगदान रहता है। सामाजिक संरचना में सदस्यों के बीच होने वाली अंत:क्रियाओं से जीवनमूल्य धीरे-धीरे विकसित होते हैं। मनुष्य की आवश्यकताएँ एवं परिस्थितिगत पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखते हुए एवं अनेक समस्याओं का सामना करते हुए जिन सामाजिक अनुभवों का सामना करना पड़ता है, उन्हीं से सामाजिक मूल्य निर्मित होते हैं। सामाजिक मूल्यों का जन्म ही सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु परस्पर सहयोग से होता है।

समाज में आपसी समन्वय, सौहार्द, सुरक्षा, समरसता एवं शांति को बनाए रखने के लिए सामाजिक मूल्यों की आवश्यकता रहती है। इनका विकास सामूहिक संबंधों के साथ होता है। मूल्यों का निर्माण मनुष्य करता है। सामाजिक मूल्यों के द्वारा ही सामाजिक संबंधों एवं व्यवहारों में एकरूपता पाई जाती है। मनुष्य के जीवन पर मूल्यों का प्रभाव उसके आचरण के रूप में देखा जा सकता है। मनुष्य के सामाजिकीकरण की प्रक्रिया में वह मूल्यों को आत्मसात् कर उसे अपने व्यवहार, आचरण एवं जीवन में ढालने का प्रयत्न करता है। मनुष्य की जिंदगी को अर्थपूर्ण बनाने में मूल्यों का बहुत अधिक योगदान होता है।

उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के निर्माण में, उसके जीवनमूल्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। समाज के प्रतिमानित व्यवहारों के अनुरूप मनुष्य आचरण करता है, जिससे समाज में संगठन और एकीकरण बना रहता है। समाज के सदस्यों के समान आदर्श, व्यवहार एवं मूल्यों को स्वीकार करने से आत्मीयता एवं सामुदायिक भावना का विकास होता है। इन्हीं मूल्यों के द्वारा मनुष्य को यह पता चलता है कि समाज की दृष्टि में उसका क्या स्थान है। समाज में अनुकूल एवं प्रतिकूल व्यवहार निर्धारण करने में मूल्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सामाजिक अस्तित्व के लिए ये मूल्य बहुत आवश्यक होते हैं। ❑

# पूज्य गुरुदेव के साहित्य में व्यावहारिक अध्यात्म के सूत्र

अध्यात्म को लेकर आजकल चर्चा का बाजार गरम है। देश-विदेश के कोने-कोने में अध्यात्म की दुकानें सजी हैं, विभिन्न रिट्रीट सेंटर, आश्रमों, साधना-कुटीरों, फाइव-स्टार रिजॉर्ट, मेडिटेशन एवं वेलबीइंग सेंटर आदि के रूप में इसके नाना रूपों के दिग्दर्शन किए जा सकते हैं, लेकिन अध्यात्म को लेकर जनमानस में भ्रम का कुहासा भी व्यापक है।

कुछ मंत्रों की रटन से सिद्धि-प्राप्ति को अध्यात्म मान बैठते हैं, कुछ कुंडलिनी जागरण की रट लगाए फिरते हैं, कुछ बिना व्यक्तित्व की पात्रता विकसित किए आँख बंदकर ध्यान की कसरत में अध्यात्म को खोजते हैं। कुछ भजन-कीर्तन को ही सब कुछ मान बैठते हैं। इसके अतिरिक्त भी अध्यात्म को लेकर वाम मार्ग की अपनी परंपराएँ हैं, जो लोगों के मध्य कुतूहल का विषय बनी रहती हैं।

अध्यात्म के प्रति भ्रम के इस सघन कुहासे के मध्य परमपूज्य गुरुदेव का जीवन एवं मार्गदर्शन प्रकाश-स्तंभ की भाँति अध्यात्म के राजमार्ग को प्रकाशित करता है और इन भ्रम-भटकावों से पथिक को सचेत करता है। व्यक्ति जहाँ खड़ा है, वहीं से उसे आगे बढ़ने, ऊपर उठने का मार्ग प्रशस्त करता है। क्या बालक, क्या किशोर-युवा, क्या गृहस्थ, क्या पुरुष-स्त्री एवं गृहिणी, क्या आस्थावान, क्या नास्तिक, सबके लिए पूज्य गुरुदेव के वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक अध्यात्म में स्थान है। सर्वविदित है कि पूज्य गुरुदेव ने पहली पुस्तक—'मैं क्या हूँ' लिखी।

इसी तरह गायत्री महाविज्ञान के तीन खंड प्रकाशित हुए, जिसमें प्रथम खंड त्रिपदा गायत्री की साधना से जुड़ा था, जिसमें तीन शरीरों की साधना, यथा भक्ति, ज्ञान व कर्मयोग के मार्ग की त्रिवेणी में साधकों को अवगाहन के लिए साधना-सूत्र दिए गए। फिर 'गायत्री महाविज्ञान भाग-2' गायत्री महाशक्ति के संदर्भ में शास्त्रीय आधारों को स्पष्ट करता है और कुछ सकाम साधनाओं का मार्गदर्शन करता है और तीसरे भाग में पंचकोषीय साधना के रूप में पंचमुखी गायत्री-साधना का पथ प्रदर्शित होता है।

बीच-बीच में एक तरफ जहाँ अखण्ड ज्योति पत्रिका में प्राण-प्रत्यावर्तन, कल्प-साधना, योग-साधना आदि से जुड़े विशेषांक प्रकाशित होते रहे तो वहीं समानांतर रूप में शांतिकुंज से साधना-सत्रों की शृंखला भी चली।

महाप्रयाण से पूर्व क्रांतिधर्मी साहित्य के रूप में उन्होंने जीवनभर की आध्यात्मिक उपलब्धियों का निचोड़ प्रस्तुत किया और 21वीं सदी उज्ज्वल भविष्य की उद्घोषणा करते हुए नए युग के मनुष्य के लिए व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक अध्यात्म का मार्गदर्शन प्रदान किया। इस सेट में सतयुग की वापसी एवं जीवन-साधना के स्वर्णिम सूत्र जैसी पुस्तकों में पूज्य गुरुदेव के व्यावहारिक अध्यात्म का सार पढ़ा जा सकता है।

पूज्य गुरुदेव पाँच व्यावहारिक सूत्रों के रूप में श्रमशीलता, मितव्ययिता, सुव्यवस्था, शालीनता एवं सहकारिता का प्रतिपादन करते हैं और चार मनोवैज्ञानिक सूत्रों के रूप में ईमानदारी, जिम्मेदारी, समझदारी एवं बहादुरी की बात करते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अनुसार, जिसने इन नौ सूत्रों को जीवन में धारण कर लिया, समझो उसने यम-

नियम को साधने का कार्य कर लिया। इसके साथ ही पूज्य गुरुदेव प्रज्ञायोग के व्यावहारिक सूत्रों के अंतर्गत संयम, स्वाध्याय, साधना एवं सेवा का मार्गदर्शन करते हैं।

संयम के अंतर्गत वे इंद्रिय-संयम, समय-संयम, विचार-संयम व अर्थ-संयम की बात करते हैं और सादगी एवं सदाचार भरे कर्त्तव्यपरायण जीवन को अध्यात्म का अनिवार्य घटक मानते हैं। जीवन देवता की साधना-आराधना के रूप में पूज्य गुरुदेव इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हैं।

पूज्य गुरुदेव के शब्दों में, पात्रता का अभिवर्द्धन ही साधना का मूल उद्देश्य है। ईश्वर को न किसी की मनुहार चाहिए और न किसी से उपहार। वह छोटी-मोटी भेंट-पूजाओं से या स्तवन-गुणगान से प्रसन्न नहीं होता। ऐसी प्रकृति तो क्षुद्र लोगों की होती है। भगवान का ऐसा मानस नहीं। वे न्यायनिष्ठ और विवेकवान हैं। व्यक्तित्व में उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समावेश होने पर जो गरिमा उभरती है, उसी के आधार पर वे प्रसन्न होते हैं और अनुग्रह बरसाते हैं।

उन्हें फुसलाने का प्रयास करने वालों की बालक्रीड़ा निराशा ही प्रदान करती है। ऐसे में कभी न देखे गए भगवान से की गई पुकार, मनुहार कब व कितनी फलित होगी, कह नहीं सकते, लेकिन जीवन देवता की साधना प्रत्यक्ष फलदायी है। इसके सत्परिणाम सुनिश्चित हैं, जो हाथोंहाथ मिलते हैं।

वे आगे कहते हैं कि—आत्मपरिष्कार, आत्मशोधन यही जीवन-साधना है। इसी को परम पुरुषार्थ कहा गया है। जिन्होंने इस लक्ष्य को समझा तो जानना चाहिए कि उन्होंने अध्यात्म तत्त्वज्ञान का रहस्य और मार्ग हस्तगत कर लिया। चरम लक्ष्य तक पहुँचने का राजमार्ग पा लिया।

'सतयुग की वापसी' पुस्तक में गुरुदेव का व्यावहारिक अध्यात्म भाव-संवेदना के जागरण के रूप में स्पष्ट होता है। एक संवेदनशील व्यक्ति ही अध्यात्म का संवाहक हो सकता है। इस तरह पूज्य गुरुदेव का अध्यात्म जीवन से जुड़ा हुआ है, जिसमें आत्मसाधना के साथ आत्मविस्तार का पक्ष भी समाहित है, जिसके अंतर्गत आत्मपरिष्कार एवं विकास के साथ परिवार, समाज एवं सकल जगत् के कल्याण का भाव जुड़ा हुआ है। यह तर्कशील, नास्तिक एवं व्यवहारप्रधान लोगों के लिए पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित व्यावहारिक अध्यात्म का अतुलनीय स्वरूप है।

आस्थावानों के लिए पूज्य गुरुदेव का व्यावहारिक अध्यात्म कर्मकांडयुक्त उपासना से प्रारंभ होता है, जिसमें गायत्री-साधना व यज्ञ विधान के साथ धार्मिकता का अवलंबन लेते हुए साधक आगे बढ़ता है और धार्मिकता से आस्तिकता की सीढ़ी को पार करते हुए अध्यात्म-क्षेत्र में प्रवेश करता है। पूरी तरह से ज्ञान-मार्ग से आगे बढ़ने वालों के द्वारा पूज्य गुरुदेव की पुस्तक 'मैं क्या हूँ' का अवलंबन लिया जा सकता है।

---

**इदं कृतमिदं नेति द्वन्द्वैर्मुक्तं यदा मनः।**
**धर्मार्थकाममोक्षेषु निश्चिंतं तदा भवेत्॥**

**अर्थात यह करना चाहिए, यह नहीं करना चाहिए ऐसे द्वंद्व से मुक्त हुआ मन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में इच्छारहित होता है।**

---

इस तरह पूज्य गुरुदेव का अध्यात्म, व्यक्ति को वह जहाँ खड़ा है, वहीं से आगे बढ़ने का मार्गदर्शन करता है और क्रमिक रूप से अपनी पात्रता के विकास के साथ, स्वयं में देवत्व से साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करता है और समाज के अभिन्न घटक के रूप में सेवा-साधना से व्यक्ति को जोड़ते हुए यह जीवन के समग्र उत्कर्ष का मार्ग प्रकाशित करता है। □

# योग-साधना का उद्देश्य और प्रभाव

मानव जीवन को श्रेष्ठ, समुन्नत और सार्थक बनाने के लिए योग-साधना अत्यंत आवश्यक एवं अपरिहार्य साधन है। यह न केवल शारीरिक बल, लचीलापन और स्वास्थ्य प्रदान करती है, बल्कि मानसिक दृढ़ता, आत्मिक स्थिरता और जीवन की दिशा में स्पष्टता भी उत्पन्न करती है। यह एक ऐसी समग्र प्रणाली है, जो व्यक्ति के तन, मन और आत्मा को संतुलित करने का कार्य करती है।

मनोविज्ञानियों का मत है कि अनेक मानसिक व्याधियाँ जैसे—तनाव, चिंता, भय और अवसाद प्रायः अनुचित जीवन दृष्टिकोण, असंयमित जीवनशैली और आत्मविमुख चिंतन के कारण उत्पन्न होते हैं।

योग एक सशक्त उपकरण है, जो व्यक्ति को इन मानसिक बाधाओं पर नियंत्रण पाने और आंतरिक संतुलन स्थापित करने में सक्षम बनाता है। नियमित योग-साधना से व्यक्ति आत्मनिरीक्षण करना सीखता है। वह अपनी कमजोरियों को पहचानता है और उन्हें सुधारने का प्रयत्न करता है। इसके लिए संयम, अनुशासन और नियमितता की आवश्यकता होती है।

यह साधना धीरे-धीरे साधक को आत्मप्रकाश की ओर अग्रसर करती है, जिससे उसके भीतर सुप्त शक्तियाँ जाग्रत होती हैं और जीवन में संतुलन एवं ध्येयबोध उत्पन्न होता है। योग का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह व्यक्ति में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत करता है। जब कोई व्यक्ति आत्मिक रूप से जाग्रत होता है, तो उसका दृष्टिकोण सीमित स्वार्थ से ऊपर उठकर व्यापक और परोपकारी हो जाता है। वह अपने जीवन को केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं रखता है, बल्कि आत्मिक उन्नति एवं जनसेवा को भी समान रूप से महत्त्व देता है।

अंततः कहा जा सकता है कि योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं, अपितु एक जीवनपद्धति है—एक आध्यात्मिक साधना है, जो मनुष्य को उसकी पूर्ण संभावनाओं की ओर ले जाती है। यह आत्मनिर्माण की वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने भीतर छिपी असीम शक्तियों को जाग्रत कर सकता है और अपने जीवन को सच्चे अर्थों में सफल, समृद्ध और लोक-कल्याणकारी बना सकता है। ❑

---

**राहगीर ने पत्थर मारा तो आम के वृक्ष से कई पके हुए आम नीचे आ गिरे। राहगीर उन्हें उठाकर अपनी राह पर चल दिया। यह दृश्य देख रहे आसमान ने वृक्ष से कहा—"वृक्ष! मनुष्य आए दिन तुम पर पत्थर से प्रहार करते हैं, पर तुम तब भी उन्हें फलों का उपहार देते हो, ऐसा क्यों?" वृक्ष हँसा और बोला—"बंधु! मनुष्य भले ही अपना धर्म छोड़ दे, पर मैं अपना धर्म कैसे छोड़ सकता हूँ?"**

---

# स्वस्थ-सुखी वृद्धावस्था के स्वर्णिम सूत्र

बुढ़ापा जीवन का स्वाभाविक कालखंड है, जिससे देर-सवेर सबको गुजरना पड़ता है। अनुभवों के साथ परिपक्व बुढ़ापा जीवन का स्वर्णिम काल है, जिसमें व्यक्ति गुणवत्तापूर्ण जीवन जी सकता है, लेकिन बढ़ती आयु के साथ यदि तन-मन के स्वास्थ्य पर ध्यान न दिया जाए तो तमाम तरह के शारीरिक एवं मानसिक रोग बुढ़ापे के साथ आ जुड़ते हैं और इसे कष्टप्रद एवं दुर्भार बना सकते हैं। समय रहते इस संदर्भ में उचित तैयारी के साथ एक सुखद एवं आनंददायक बुढ़ापे की आधारशिला रखी जा सकती है। इस संबंध में प्रस्तुत हैं कुछ स्वर्णिम सूत्र, जिन पर विचार किया जा सकता है।

जीवन को एक जीवंत उद्देश्य के साथ जिएँ- सबसे महत्त्वपूर्ण है—एक अर्थपूर्ण जीवन जीने की राह, जो जीवन को उत्साह, उमंग से भरे रखती है। अपने किसी शौक या मिशन के साथ जीवन, व्यक्ति को बुढ़ापे में भी आशा-उत्साह के साथ लबरेज रखता है, जो स्वतः ही तन-मन को अपने अनुकूल चलने के लिए विवश-बाध्य करता है। साथ ही दूसरों के काम आने की अनुभूति भी व्यक्ति को आनंदपूरित रखती है।

इसके साथ शरीर के स्वास्थ्य का उचित ध्यान रखें, जो बढ़ती आयु में सुखी जीवन का सुदृढ़ आधार रहता है। स्वास्थ्य का पहला आधार है उचित आहार। हम क्या खाते हैं, कितना खाते हैं व कैसे खाते हैं—यह महत्त्वपूर्ण है। अतः अपनी प्रकृति के अनुरूप पौष्टिक, सुपाच्य एवं संतुलित आहार लें। मौसमी फल-सब्जियों का उपयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत उपयोगी रहता है।

आहार के साथ पर्याप्त जल का उपयोग करें- जो विषाक्त तत्त्वों को बाहर निकालता है, चयापचय तंत्र को सक्रिय रखता है और भार नियंत्रण में भी सहायक रहता है। दूसरा आधार है, सक्रिय जीवन— इसके लिए बैठने से अधिक चलें। लगातार एक ही स्थान पर बैठने से एक तरह से शरीर को जंग लग जाती है और तमाम तरह के विकार एकत्र होना प्रारंभ होते हैं। मधुमेह, हृदय रोग, मोटापा जैसे रोग इसके स्वाभाविक परिणाम रहते हैं। अतः नियमित रूप से चलने को जीवनचर्या का अंग बना लें।

छह से नौ हजार कदम चलने को जहाँ आदर्श माना जाता है, वहीं दो से साढ़े चार हजार कदमों से शुभारंभ किया जा सकता है। इसके साथ शारीरिक बल और गतिशीलता पर कार्य करते रहें। इसके लिए नियमित रूप से जितना संभव हो व्यायाम करें, जिसमें अपनी क्षमता अनुसार आसन, स्ट्रेचिंग, भारोत्तोलन आदि को दिनचर्या में शामिल किया जा सकता है। इनसे मांसपेशियाँ व जोड़ सशक्त एवं स्वस्थ रहेंगे।

अपनी सुविधानुसार तैराकी, साइक्लिंग आदि को आजमाया जा सकता है। आहार और व्यायाम के साथ पूरी नींद लें। नींद स्वस्थ-सुखी जीवन का प्रकृतिप्रदत्त उपचार है। इसका भरपूर मात्रा में सेवन करें। इसके लिए सात से नौ घंटे की नींद पर्याप्त रहती है। रात व दिन में इसका एक समय निर्धारित कर सकते हैं। नींद के साथ सूर्य की रोशनी का भरपूर उपयोग करें, जो विटामिन-डी का स्रोत रहता है और इसकी कमी के कारण तमाम तरह के रोगों को पनपते देखा जाता है।

दिनचर्या में अपने बैठने, चलने व खड़े होने की मुद्रा का भी ध्यान रखें। इन सबके साथ नियमित रूप से चिकित्सकीय जाँच अवश्य कराएँ, जिससे पनप रहे विकारों की समय रहते पहचान हो सके और समय पर इनके निराकरण की व्यवस्था हो सके, इससे पहले कि वे असाध्य व लाइलाज रूप ले लें।

आजकल अधिकांश घातक रोग इस चरण के प्रति लापरवाही का परिणाम रहते हैं। इस संदर्भ में समय रहते बरती गई सावधानी बुढ़ापे को निरोगी एवं सुखद बना सकती है। जीवन में तनाव को हावी न होने दें। जितना तनावरहित जीवन जिएँगे, बुढ़ापा उतना ही दूर रहेगा। तनावग्रस्त जीवन तो युवावस्था में ही बुढ़ापे का पर्याय बन जाता है। कितने युवा समय से पहले ही तनाव के दुष्प्रभाव में मुरझा जाते हैं। तनाव के निवारण के लिए गहरी श्वास, शिथिलीकरण, ध्यान आदि का अभ्यास कर सकते हैं।

अपने दृष्टिकोण के बदलने से ये कार्य सरल हो जाते हैं। इसके लिए स्वाध्याय की आदत डालें, जिसके प्रकाश में जीवन में तनाव व अन्य समस्याओं के कारण की सूक्ष्म पहचान संभव होती है और इनका निराकरण जड़मूल से संभव होता है। अपने बुढ़ापे की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए जिज्ञासा का भाव जीवंत रखें और प्रत्येक दिन कुछ नया सीखते रहें। हर सप्ताह मोहमाया का ज्ञान देने वाली एक नई पुस्तक अवश्य पढ़ें या सुनें। इससे जीवन रुचिकर लगने लगेगा।

मानसिक सक्रियता के लिए प्रतिदिन किसी नए कौशल पर कार्य करें। इससे उत्पन्न सृजन का आनंद बुढ़ापे का एक सबल सहारा सिद्ध होगा। अपने रिश्तों व संबंधों को महत्त्व दें, परिवार एवं समाज से जुड़े रहें। आपसी जुड़ाव एक सुरक्षा का भाव देता है, जीवन के प्रति सकारात्मक भाव का संचार करता है।

घर-पड़ोस में यदि छोटे बच्चे हैं तो उनको अपने अनुभव से कुछ सिखा सकते हैं। अपनी रुचि के अनुरूप किन्हीं गतिविधियों से जुड़कर अपनी रुचि के लोगों के साथ संवाद स्थापित कर सकते हैं। स्वयंसेवी समूहों या गायत्री परिवार से जुड़कर एक स्वयंसेवक के रूप में अपनी सेवा दे सकते हैं। वस्तुतः जीवन की उपयोगिता को सिद्ध करने वाले अनुभव तन-मन से व्यक्ति को स्वस्थ व युवा रखते हैं। जबकि परिवार-समाज से कटा नितांत एकाकी जीवन व्यक्ति को अवसाद एवं उद्विग्नता के अँधेरे में धकेलने वाला अभिशाप सिद्ध होता है, जो आगे चलकर असाध्य आधि-व्याधियों का कारण बनता है।

प्रकृति के साथ यथासंभव जुड़ाव रखें। घर-आँगन में बागवानी व हरियाली से जुड़े सृजनात्मक कार्यों में स्वयं को व्यस्त रख सकते हैं। इससे समय का सदुपयोग होगा और जीवन में छोटी-छोटी चीजों में आनंद लेना सीखेंगे। इसके साथ उगते हुए सूरज, बारिश की फुहारों, हवा की शीतल बयार, अस्ताचल सूर्य की लालिमा, रात्रि की नीरवता अर्थात जीवन के हर पल का आनंद लिया जा सकता है।

पूज्य गुरुदेव की पुस्तक 'सुनसान के सहचर' को पढ़कर राह के हर घटक से प्रेरणा लेने की सीख ली जा सकती है। दुर्व्यसनों से बचें व गलत आदतों को प्रश्रय न दें। धूम्रपान, शराब, नशा जैसी आदतें स्वास्थ्य के साथ जीवन को बरबाद करने वाली रहती हैं। इनसे सर्वथा दूर ही रहें। यदि कोई गलत आदत पड़ गई है, तो इसके निराकरण के लिए छोटे-छोटे कदम उठाएँ, स्वयं से छोटे-छोटे वायदे करें और निभाएँ।

इसके अंतर्गत रचनात्मक गतिविधियों को जीवन का अंग बनाएँ; जैसे चित्रकला, गीत-संगीत, नृत्य, लेखन आदि। अपनी क्षमता एवं कौशल के अनुरूप जीवन में नए-नए प्रयोग करें।

नए-नए स्थलों का भ्रमण करें। आजकल तो घर बैठे ही विश्व के हर कोने का सोशल मीडिया के माध्यम से मानसिक भ्रमण का आनंद लिया जा सकता है।

सर्वोपरि ईश्वर का सुमिरन करें, इस जीवन के लिए उनका धन्यवाद ज्ञापन करें। साथ ही अपने जीवन को इस मुकाम तक पहुँचाने में सहायक सभी मित्रों, गुरुजनों, संबंधियों एवं विरोधियों के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त करें और सबके लिए कल्याण व सद्बुद्धि की कामना व प्रार्थना करें। इस तरह से जीवन के स्वाभाविक अंग बुढ़ापे के प्रभावों को अपनी स्वस्थ व संतुलित जीवनशैली, सकारात्मक चिंतन एवं सुधरी आदतों के आधार पर बहुत सीमा तक निरस्त करते हुए एक स्वस्थ एवं सुखी जीवन जी सकते हैं।

यदि अभी तक आपने आनंददायक बुढ़ापे के बारे में नहीं सोचा है तो आज एवं अभी से इस संदर्भ में कार्य करना प्रारंभ कर दें। □

---

**संत तुकाराम के गाँव से यात्रियों का दल तीर्थाटन के उद्देश्य से निकला। वे जाने से पहले संत तुकाराम से मिलने आए व उनसे आग्रह करने लगे कि वे भी तीर्थयात्रा पर चलें। तुकाराम बोले—"भगवान! सृष्टि के कण-कण में हैं और ऐसे में स्थान विशेष पर जाने से क्या मिलेगा?" यात्रीगण बोले—"तीर्थयात्रा पर जाने से पाप धुलते हैं, स्वर्ग में स्थान सुनिश्चित हो जाता है।" यह सुनकर तुकाराम उन्हें एक कद्दू देते हुए बोले—"भाइयो! मैं तो इस बार इस सौभाग्य से वंचित रह जाऊँगा, परंतु मेरे प्रतिनिधि के रूप में आप मेरे कद्दू को ले जाएँ।"**

**गाँववाले बिना गूढ़ार्थ समझे कद्दू को लेकर तीर्थयात्रा पर चले गए और उसको हर तीर्थस्थल पर अच्छे से नहलाया-धुलाया। वहाँ से लौटने के बाद उन्होंने वह कद्दू संत तुकाराम को वापस लौटाया तो उन्होंने सभी तीर्थयात्रियों को सायं भोजन पर आमंत्रित किया। जब सभी तीर्थयात्री भोजन करने बैठे तो ये देखकर बड़े विचलित हुए कि भोजन में एक सड़े-कड़ुए कद्दू की सब्जी बनी थी।**

**वे अपना रोष संत तुकाराम से व्यक्त करने लगे तो संत तुकाराम बोले—"भाइयो! ये वही कद्दू है, तीर्थयात्रा पर जाने से इसको धुलकर साफ हो जाना चाहिए था, फिर ये कड़ुआ कैसे रह गया?" अब यात्रियों को संत तुकाराम का निहितार्थ समझ में आया कि मन के साफ हुए बगैर, किसी तीर्थयात्रा से कोई लाभ नहीं होता है।**

---

# ऋतु-परिवर्तन के प्रभाव

ऋतु-परिवर्तन का प्रकृति के साथ-साथ मनुष्य के शरीर और मन पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। ठंढक और गरमी, वर्षा और शुष्कता, धूप और अंधकार- ये सभी तत्त्व केवल बाहरी वातावरण को ही नहीं बदलते, बल्कि जीव-जगत् की आंतरिक दशा को भी प्रभावित करते हैं। ऋतुओं का यह उतार-चढ़ाव स्वास्थ्य, ऊर्जा और मानसिक स्थिति; तीनों पर अपनी छाप छोड़ता है।

आयुर्वेद के प्राचीन आचार्यों ने स्पष्ट कहा है कि स्वास्थ्य की रक्षा के लिए आहार और विहार को ऋतु के अनुसार ढालना आवश्यक है। यदि ऐसा न किया जाए तो ऋतु-परिवर्तन शरीर में विकार उत्पन्न कर देता है और रोगों को जन्म देता है।

इसी कारण आयुर्वेद में 'ऋतुचर्या' और 'दिनचर्या' का इतना महत्त्व है। गरमी में शरीर का जल-तत्त्व कम होता है और पित्त की वृद्धि होती है। वर्षा ऋतु में नमी और आर्द्रता वात और कफ को बढ़ाते हैं। शरद ऋतु पित्तजन्य विकारों को उभार देती है, जबकि शीत ऋतु में जठराग्नि प्रबल होकर पाचनशक्ति को बढ़ा देती है, परंतु सावधानी न बरती जाए तो सरदी-जुकाम और गठिया जैसी समस्याएँ सामने आती हैं।

वसंत ऋतु उल्लास और प्रसन्नता का भाव जगाती है, किंतु साथ ही कफ रोगों के लिए अनुकूल होती है। प्रकृति का यह प्रभाव केवल शरीर तक सीमित नहीं है, यह मन को भी गहराई से छूता है। बरसात का मौसम प्रायः आलस्य और सुस्ती लाता है। शरद में चंचलता बढ़ती है, जबकि शीत ऋतु में मन अधिक एकाग्र और सक्रिय रहता है।

वसंत में हृदय हलकापन और आनंद अनुभव करता है। यदि व्यक्ति चाहता है कि ऋतु-परिवर्तन उसके स्वास्थ्य और सुख-शांति में बाधा न बने तो उसे अपने आहार-विहार को ऋतु के अनुरूप ढालना चाहिए। असंयम और असमय के आचरण से बचना चाहिए और प्राकृतिक वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहिए।

ऋतु-चक्र प्रकृति का सनातन नियम है। यह शरीर और मन दोनों पर गहरा प्रभाव डालता है। जो व्यक्ति इस चक्र के साथ अपने जीवन को तालमेल में रखता है, वह न केवल रोगों से बच सकता है, बल्कि स्वस्थ, प्रसन्न और संतुलित जीवन का अनुभव कर सकता है। स्वास्थ्य केवल औषधियों पर निर्भर नहीं है, बल्कि प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाने की कला पर भी आधारित है।

आयुर्वेद और ज्योतिषशास्त्र दोनों मानते हैं कि ऋतु-परिवर्तन के साथ शरीर और मन में भी व्यापक बदलाव आते हैं। वर्षभर के छह ऋतु-चक्र केवल वातावरण को ही नहीं बदलते, बल्कि मनुष्य की जीवन-शक्ति, पाचन-तंत्र और मानसिक संतुलन तक को प्रभावित करते हैं। प्रकृति के इस चक्र को समझे बिना स्वास्थ्य की संपूर्णता संभव नहीं। जब वसंत आता है तो प्रकृति में हलचल होती और नवजीवन की तरंगें उठती हैं।

इस समय कफ की वृद्धि स्वाभाविक है और यदि इसका ध्यान न रखा जाए तो रोग उत्पन्न हो सकते हैं। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य का ताप प्रबल होता है।

पसीना अधिक निकलता है, शरीर दुर्बल होता है और पित्त विकार बढ़ते हैं। वर्षा ऋतु आते ही आर्द्रता और उमस से वात और कफ दोनों ही उत्तेजित होते हैं, जिससे पाचनशक्ति कमजोर हो जाती है।

शरद ऋतु में पित्त का प्रकोप सर्वाधिक रहता है। त्वचा और रक्त से जुड़े रोग, जैसे फोड़े-फुंसी या नेत्र-विकार इसी ऋतु में अधिक देखने को मिलते हैं। हेमंत और शिशिर ऋतु अपेक्षाकृत स्वास्थ्यवर्द्धक मानी गई हैं। इन दिनों जठराग्नि प्रबल रहती है, भोजन पचने की शक्ति बढ़ जाती है और बल-संचय का अवसर मिलता है, किंतु यदि असंयम किया जाए तो सरदी, जुकाम और वातजन्य रोग भी उत्पन्न हो सकते हैं।

ऋतुओं का यह चक्र केवल शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं है; मन की अवस्था भी इससे गहराई से जुड़ी हुई है। वसंत में उत्साह और उमंग का अनुभव होता है। ग्रीष्म में चिड़चिड़ापन और थकान बढ़ जाती है, वर्षा में मन भारीपन और आलस्य से भर जाता है, शरद में बेचैनी और चंचलता का अनुभव होता है, जबकि शीत ऋतु मन को स्थिर और एकाग्र बनाती है।

मनुष्य का जीवन तभी संतुलित रह सकता है, जब वह प्रकृति के इस चक्र के साथ तालमेल बिठाए। यदि हम ऋतु के अनुसार आहार-विहार और दिनचर्या का पालन करें तो स्वास्थ्य सुरक्षित रह सकता है। इसके विपरीत, लापरवाही रोगों का द्वार खोल देती है। विज्ञान की नवीन खोजें भी इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि ऋतुओं का सीधा प्रभाव वनस्पति, प्राणी और मनुष्य पर पड़ता है।

पौधों की वृद्धि, फूलों का खिलना, पक्षियों का प्रवास, यहाँ तक कि मनुष्य के हृदय और रक्तचाप तक में ऋतु-परिवर्तन के साथ परिवर्तन देखा जाता है। स्पष्ट है कि स्वास्थ्य केवल औषधियों पर नहीं टिका है।

प्रकृति के इस सनातन चक्र को समझकर और उसके साथ तालमेल बिठाकर ही दीर्घायु और संतुलित जीवन संभव है। जो व्यक्ति ऋतु-चक्र का आदर करता है, वह रोगों से बचते हुए शक्ति, प्रसन्नता और दीर्घकालिक स्वास्थ्य का आनंद ले सकता है। ❑

---

**गोपथ ब्राह्मण में उल्लेख आता है कि अनेक युगों पूर्व भगवान ब्रह्मा ने सृष्टि के लिए अत्यंत दुष्कर तपस्या की। घोर तपस्या के फलस्वरूप उनके शरीर से पसीने की धारा बह निकली। इसमें उनका रेतस भी सम्मिलित हो गया। आगे चलकर यह सम्मिलित जल दो धाराओं में विभक्त हो गया।**

**उस रेतस के एकत्रित हो जाने से ऋषि का जन्म हुआ। 'मैं कौन हूँ' 'मेरे पिता कौन हैं' 'मेरा जन्म कैसे हुआ' इस उत्सुकता के साथ जब वे भगवान ब्रह्मा को ढूँढ़ने चले तो आकाशवाणी हुई—"अथर्ववाग्, एवं एतग् स्वेदाय स्वन्निच्छ" और इस कारण उनका नाम अथर्वण पड़ा। जल की दूसरी धारा से महर्षि अंगिरा का जन्म हुआ और इस प्रकार अथर्ववेद की उत्पत्ति हुई।**

# सुखी जीवन का आधार

यदि किसी व्यक्ति का शरीर स्वस्थ न हो, तो चाहे वह करोड़पति क्यों न हो, उसका जीवन कठिन और दुःखदायी ही रहेगा। सही मायनों में सुखी वही व्यक्ति है जिसका शरीर, मन और आत्मा तीनों संतुलित और स्वस्थ हों।

प्राचीनकालीन सभ्यताओं की गिनती करते समय भारत को एक महान राष्ट्र माना गया है। इसकी वजह सिर्फ इसका भौगोलिक विस्तार या प्राकृतिक संसाधन नहीं थे, बल्कि यहाँ की संस्कृति, परंपराओं और जीवनशैली ने इसे गौरवपूर्ण बनाया था। हमारे ऋषियों ने संतुलित जीवन को सबसे बड़ा सुख माना है।

उन्होंने कहा कि—सुख केवल भौतिक वस्तुओं में नहीं, बल्कि संयमित, सरल और नैतिक जीवन में है। अगर मन और इंद्रियाँ काबू में नहीं हैं, तो कितनी भी सुख-सुविधाएँ हों, वे व्यर्थ हैं। प्राचीन ऋषियों ने भोजन, रहन-सहन, वाणी और व्यवहार सभी में संतुलन और संयम पर जोर दिया। उनका मानना था कि अधिकता या अत्यधिक इच्छा से जीवन में अशांति और बीमारी आती है।

वे कहते थे कि—**'अति सर्वत्र वर्जयेत्'**। हर चीज की अति हानिकारक है। मन को नियंत्रित करने से ही आत्मिक सुख और शांति मिलती है। जो मनुष्य अपने विचारों, इच्छाओं और व्यवहार पर नियंत्रण रखता है, वही सच्चा सुखी हो सकता है। इसके लिए नियमित साधना, सत्संग, स्वाध्याय और आत्मनिरीक्षण जरूरी है। हमारे ग्रंथों में कहा गया है कि सुख स्थायी तभी हो सकता है जब वह आत्मा के स्तर पर अनुभव किया जाए। शरीर और मन तो बदलते रहते हैं, लेकिन आत्मा अडिग और शांत है। जब व्यक्ति आत्मा से जुड़ जाता है, तो बाहरी परिस्थितियाँ उसे दुखी नहीं कर पातीं।

अतः सच्चा सुख केवल भोग-विलास में नहीं, बल्कि आत्मिक संतुलन, नैतिक आचरण और संयमित जीवन में है। यही हमारे ऋषि-मुनियों की सीख थी और यही आज भी उतनी ही सार्थक और आवश्यक है। उपयुक्त चिकित्सा प्रणाली का लाभ तभी संभव है, जब जीवनचर्या में बदलाव किया जाए।

केवल दवाइयों से या आहार के कुछ नियमों से ही संपूर्ण आरोग्य की आशा नहीं की जा सकती। इसके लिए जीवन में शुद्धता, संयम और अनुशासन की आवश्यकता है। शरीर की सुरक्षा के लिए आहार और विहार आवश्यक हैं, तो मन की शुद्धता के लिए सत्संग, स्वाध्याय, ध्यान और आत्मनियंत्रण जरूरी हैं।

यदि शरीर को आराम चाहिए तो मन को भी शांति मिलनी चाहिए, अन्यथा भीतर की व्याकुलता रोगों को जन्म देगी। सद्व्यवस्था और समरसता का आरंभ व्यक्ति के भीतर से ही होना चाहिए। यदि समाज को आदर्श बनाना है, तो पहले स्वयं को सजग और जागरूक बनाना होगा। जीवन को सुंदर और सफल बनाने के लिए मानसिक और आत्मिक संतुलन आवश्यक है।

यह तभी संभव होगा जब हम जीवन को सत्यान्वेषण की दिशा में अग्रसर करें। धार्मिकता का अर्थ केवल कर्मकांड नहीं, बल्कि आत्मा की

पवित्रता और व्यवहार की शुद्धता है। यज्ञ, ध्यान, उपासना तभी सार्थक हैं जब जीवन में उनका प्रतिफल सद्‌गुणों के रूप में प्रकट हो।

आज समाज को केवल भौतिक उन्नति की नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की भी आवश्यकता है। संसार की गति बदल रही है, ऐसे में यदि व्यक्ति अपने मूल्यों पर अडिग रहे, तो वह अंधकार में भी प्रकाश फैला सकता है।

सामूहिक और व्यक्तिगत जीवन में संतुलन, संयम और आत्मिक अनुशासन को अपनाना ही समय की माँग है। परस्पर सहयोग और सौहार्द से ही एक सशक्त और समरस समाज की स्थापना की जा सकती है। ☐

## आवश्यक सूचना

1. कोई भी संदेश ( फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप ) व्यक्तिगत न भेजें, न कोई धनराशि व्यक्तिगत भेजें। व्यक्तिगत संदेश एवं भेजी गई धनराशि पर कार्रवाई करना संभव न होगा। केवल संस्थागत फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप पर ही संदेश एवं राशि भेजें।
2. सभी पत्र व्यवहार, ई-मेल, व्हाट्सएप संदेश में अपना पूरा नाम, पता, पिनकोड, मेल आई.डी., मोबाइल नंबर, व्हाट्सएप नंबर का उल्लेख अवश्य करें, ताकि त्वरित कार्रवाई की जा सके।
3. अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि पर्याप्त दूरी पर हैं। अतः संदेश अलग-अलग पतों पर ही भेजें। संयुक्त संदेश, धनराशि भेजने से कार्रवाई में विलंब होता है।
4. राशि भेजने के पश्चात जमापर्ची के साथ पूरा संदेश भेजें, ताकि समायोजन हो सके।
5. अब रजिस्टर्ड सेवा डाक विभाग द्वारा बंद कर दी गई है। जब भी अखण्ड ज्योति न पहुँचे, तुरंत सूचित करें। दोबारा भिजवाने की व्यवस्था की जाएगी।

*पता—अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा ( उ.प्र. ),* 281 003
फोन—( 0565 ) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449, मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039, व्हाट्सएप नं. 9927086290,
Email-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

## अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

| Beneficiary – | Akhand Jyoti Sansthan | I.F.S. Code | Account No. |
|---|---|---|---|
| S.B.I. | Ghiya Mandi Mathura | SBIN0031010 | 51034880021 |
| P.N.B. | Chowki Bagh Bahadur, Mathura | PUNB-0183800 | 1838002102224070 |
| I.O.B. | Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura | IOBA0001441 | 144102000000006 |

**विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।**

# पेड़-पौधों का आश्चर्यजनक संसार

पेड़-पौधों का संसार अद्भुत और आश्चर्यजनक है। अब तक लगभग चार लाख वनस्पतियों का अनुसंधान किया जा चुका है, परंतु अभी भी जो खोजा गया है, वह पूर्ण नहीं है। इस संदर्भ में तमाम अन्वेषण किए जा रहे हैं। पेड़-पौधों की संख्या अनगिनत है, फिर भी जिनके विषय में जानकारी मिली है, वह बड़ी रोचक है।

इन अनोखे पेड़ों की बातें भी अनोखी हैं। भारत में हिमालय के आस-पास कुछ ऐसे पौधे पाए जाते हैं, जो रात के अँधेरे में हीरे व रेडियम की भाँति चमकते हैं। 'सोम औषधि' नामक एक पौधे में चाँदनी से पूर्णिमा की रात तक 15 पत्तियाँ प्रकट होती हैं और अँधेरी रात में अमावस्या तक इसके ये सारे पत्ते गिर जाते हैं तथा पौधा सूखी लकड़ी के समान दिखने लगता है, जो रात में चमकता है।

कुछ ऐसे पौधे भी पाए जाते हैं, जिनके तने से निकलने वाला विशेष प्रकार का रस अँधेरे में चमकता है। कवकों में कुकुरमुत्ते की कुछ ऐसी जातियाँ हैं, जो रात में कई रंग का सुनहरा प्रकाश उत्पन्न करती हैं। कुछ वृक्ष ऐसे भी पाए जाते हैं, जिनकी छाया के तले पड़ने वाली सभी घास जल जाया करती है।

छोटा नागपुर स्थान पर पाया जाने वाला ये पेड़ 'काला कोरेया' कहलाता है, जिसकी छाया जहाँ तक जाती है, उतनी दूर तक की सारी घास जल जाती है और यहाँ की मिट्टी का रंग भी काला हो जाता है।

मनुष्य के लजाने की बात तो सभी जानते हैं, लेकिन कुछ पेड़-पौधे भी लज्जालु और भावुक होते हैं। 'लाजवंती' या जिसे 'छुईमुई' भी कहते हैं, वे पौधे मनुष्य के स्पर्श मात्र से शरमा जाते हैं और अपनी पत्तियों को सिकोड़ लेते हैं।

ऐसा नहीं कि केवल मनुष्य और जंगली जीव-जंतु ही दुःख के समय रोते हैं। कुछ पेड़ भी रोते हैं। पेकनरी द्वीप में पाया जाने वाला 'लाउरेल' नामक वृक्ष रोता है। 'मेड्रक वृक्ष' की शक्ल बहुत कुछ आदमी की तरह होती है और उसे काटने पर या उखाड़े जाने पर वह एक बच्चे की तरह रोने लगता है।

विश्व में कुछ ऐसे पौधे भी होते हैं, जो अपने शत्रु की उपस्थिति में भय और मित्र की उपस्थिति में प्रसन्नता महसूस करते हैं। पेड़-पौधे जड़ व अपनी जगह पर स्थिर माने जाते हैं, लेकिन विश्व में कुछ ऐसे पौधे भी होते हैं जो मनुष्य की ही तरह घुमक्कड़ प्रकृति के होते हैं।

अमेरिका में 'मैनग्रोव' नामक विशाल पेड़ जो सैकड़ों फुट तक ऊँचे होते हैं, अपनी मंद-मंद गति से चलकर किलोमीटरों की दूरी तय कर लेते हैं। इससे कुछ भिन्न 'टूम्बल विड्स' नामक एक घास की प्रजाति है, जो रेगिस्तान में पाई जाती है। यह जल के अभाव में अपनी जड़ों को भूमि से अलग कर लेती है और उपयुक्त जल व मिट्टी डालने पर अपनी जड़ें पुनः जमा लेती है।

कुछ पौधे मनुष्य की शक्ल से मिलते-जुलते चेहरे वाले होते हैं। एक अन्य प्रकार का पौधा ऐसा होता है कि उसकी जड़ें एक महिला की तरह दिखती हैं। जिस कारण इस पौधे को कुछ ऐसे ही नाम से पुकारते हैं।

'जलजमनी' या जिसे 'वाटर प्रजर प्लांट' भी कहते हैं, एक विशेष प्रकार का आरोही पौधा होता है, जिसकी पत्तियों और तने का रस (सैप) पानी में मिला देने से पूरा पानी बरफ के समान जम जाता है।

'संजीवनी बूटी' के नाम से ज्ञात एक पौधा होता है, जो पूरी तरह सूखने के बाद भी पानी में डाल देने पर हरा-भरा दिखाई देता है। अफ्रीका के देशों में पाया जाने वाला 'एंड्रसोनिया डिजीटोटा' नामक वृक्ष विश्व का एक अद्भुत वृक्ष है। इसकी जड़ें जमीन के अंदर लगभग 100 मीटर की गहराई तक चली जाती हैं।

इसके विशालकाय खोखले उदर में पानी भरकर रखा जाता है, जिसे रेगिस्तानी यात्रियों को बेचा जाता है। इसके एक वृद्ध पेड़ के खोखले तने में अनेकों लीटर पानी समा सकता है। इस पेड़ के संबंध में एक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि इसके मोटे तने को खोदकर उसमें शव दफनाए जाते हैं और बिना दवा लगाए इसके तने में रखा गया शव सैंकड़ों वर्षों तक खराब नहीं होता है।

ऑस्ट्रेलिया के एक शहर में इस वृक्ष के तने को जेलखाने के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि पानी का हौज बनाने, शव दफनाने और बंदीगृह के रूप में उपयोग में लाने के बावजूद भी यह पेड़ सूखता नहीं है, बल्कि लगातार बढ़ता रहता है।

दुनिया में कुछ ऐसे पौधे भी होते हैं, जिन्हें हम नंगी आँखों से नहीं देख पाते। क्लेमाइडोमोनस, स्पाइरोगाइरा और बालवॉक्स कुछ ऐसे ही जलीय पौधों के नाम हैं, जिन्हें देखने के लिए हमें आवर्धित संयुक्त सूक्ष्मदर्शी की सहायता लेनी पड़ती है। यह एक ऐसा पौधा होता है, जिसकी मांसल पत्तियों के किनारे के खाँचों में एक कली पाई जाती है, जिसे मिट्टी में दबा देने पर अनुकूल परिस्थितियों में एक स्वतंत्र पौधा पनप जाता है। इस अजूबे के कारण ही इस पौधे को 'अजूबा' नाम से पुकारते हैं।

कई देशों में एक प्रकार का मांसाहारी अथवा कीटभक्षी पौधा पाया जाता है। यह पौधा सर्वाधिक दलदलीय स्थानों में बहुतायत में पाया जाता है, जहाँ की भूमि में नाइट्रोजन की कमी होती है। ये पौधे अपने शरीर के खास अंगों के द्वारा कीड़ों आदि का भक्षण कर आवश्यक नाइट्रोजन को पूरा करते हैं। एशिया के कुछ देशों में पाया जाने वाला एक मांसाहारी पौधा 'पिचर प्लांट' होता है, जिसे घटपर्णी या तुम्बिलता भी कहते हैं।

इस प्रकार पेड़-पौधों का भी एक अनोखा संसार है। इस संसार में उनके क्रियाकलाप रोचक एवं रोमांचक होते हैं। वे प्रकृति का अनुपम उपहार हैं- जो यह दरसाता है कि प्रकृति का कोई भी घटक कमजोर नहीं है। ❑

---

**संत तुकाराम मंदिर जाने वाले मार्ग पर खड़े थे। एक प्रसिद्ध संत उसी मार्ग से निकले। जा तो वे मंदिर को रहे थे, पर संत तुकाराम को देखकर, उन्हें वहीं प्रणाम करके वापस लौट चले।**

**शिष्यों ने पूछा—''गुरुवर! मंदिर में दर्शन नहीं करेंगे?'' संत बोले—''भगवान के मंदिर में जाकर देखना तो साधारण बात है, कोई भी कर सकता है, पर यदि उसके दर्शन हो गए जो प्रत्येक जीव में भगवान का दर्शन करता है तो समझो कि स्वयं भगवान के दर्शन हो गए।'' महापुरुष स्वयं प्रभु की उपस्थिति का प्रतीक होते हैं, जो उन्हें सही अर्थों में जान लेता है, वो भगवान को भी जान जाता है।**

---

# विकृत दृष्टिकोण ही परेशानियों का कारण

भगवान ने यह सुंदर दुनिया बनाई, पर हर तरफ दुःख और पीड़ा क्यों दिखाई देती है? इसका कारण यह नहीं कि सृष्टि में कोई त्रुटि है, बल्कि यह कि हम चीजों को देखने का नजरिया गलत रखते हैं। हमारी सोच में विकृति आ गई है। हम अपनी अपेक्षाओं, वासनाओं और अहंकारों के कारण वस्तुओं और घटनाओं की गलत व्याख्या करते हैं, जिससे दुःख का जन्म होता है।

यह दुनिया अपने आप में बुरी नहीं है, बल्कि हमारे अंदर की नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ—ईर्ष्या, क्रोध, मोह आदि ही जीवन को दुःखमय बनाते हैं। जीवन में जो समस्याएँ आती हैं, वे हमारे दृष्टिकोण की परीक्षा लेने के लिए आती हैं। यदि हम उन्हें सुधार और आत्मपरिष्कार का अवसर मानें, तो वे वरदान बन सकती हैं।

मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह हर चीज को अपने अनुकूल देखना चाहता है। वह चाहता है कि दुनिया उसकी अपेक्षाओं के अनुसार चले, पर जब ऐसा नहीं होता, तब वह दुःखी होता है। यदि हम वस्तुस्थिति को वैसा-का-वैसा स्वीकार कर लें और उसे ईश्वर की इच्छा मानकर अपने आंतरिक विकास के लिए उपयोग करें, तो हमें मानसिक शांति प्राप्त हो सकती है।

मनुष्य के दुःख की सबसे बड़ी वजह है—अपनी मानसिकता की सीमितता और विकृति। जैसे किसी की आँखों में दोष हो तो सुंदर दृश्य भी उसे धुँधले दिखेंगे, वैसे ही जिनकी दृष्टि दूषित है, वे जीवन को कष्टमय ही पाएँगे।

हमें अपनी अंतर्दृष्टि को शुद्ध करना होगा। जब मन शांत और पवित्र होगा तब ही जीवन की समस्याएँ सही परिप्रेक्ष्य में समझ में आएँगी। मनुष्य की महानता इसी में है कि वह कठिनाइयों में भी अवसर ढूँढ़ ले।

जो व्यक्ति हर परिस्थिति को आत्मविकास के साधन के रूप में लेता है; वह दुःख से ऊपर उठ जाता है। उसे शांति और आनंद की अनुभूति होती है; क्योंकि उसने अपने दृष्टिकोण को सही कर लिया होता है। वास्तव में दुःख और परेशानी की जड़ें बाहर नहीं, बल्कि हमारे भीतर छिपी हैं। यदि हम इन्हें पहचानकर सुधार लें तो जीवन स्वतः ही सुखद बन जाएगा।

जब तक कोई व्यक्ति अपने भीतर की सोच को नहीं बदलता, तब तक कोई भी बाहरी साधन या संपत्ति उसे सच्चा सुख नहीं दे सकते। इतिहास गवाह है कि जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी आत्मनिर्माण का मार्ग अपनाया, वही सच्चे अर्थों में जीवन में सफल हुए।

उन्होंने अपने जीवन को तपोभूमि बनाया और समाज को नई दिशा दी। संसार में परिवर्तन अनिवार्य है। यह परिवर्तन कभी भौतिक रूप में होता है तो कभी मानसिक और सामाजिक रूप में, लेकिन जो व्यक्ति हर परिस्थिति में अपने लक्ष्य और मूल्यों को बनाए रखता है, वही स्थिर और शांत जीवन जी पाता है। वह दूसरों के लिए प्रेरणा बनता है। मनुष्य के जीवन में आने वाली चुनौतियाँ वास्तव में उसे परखने और निखारने का साधन होती हैं। यदि हम उन्हें स्वीकार कर आत्ममंथन और आत्मपरिष्कार का मार्ग अपनाएँ, तो वही कठिनाइयाँ हमारी सबसे बड़ी संपत्ति बन सकती हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि महापुरुषों ने संघर्षों के बीच ही अपनी महानता की नींव रखी। सुभाषचंद्र बोस, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानंद—इन सभी ने अपने जीवन में कठिनाइयों को आत्मविकास का साधन बनाया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि जब सोच सकारात्मक हो तो कोई भी स्थिति बाधा नहीं बन सकती।

जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह नहीं कि हम सुख-सुविधाओं से घिरे रहें, बल्कि यह है कि हम अपने भीतर के गुणों को इतना विकसित करें कि किसी भी संकट में डगमगाएँ नहीं। यह आत्मबल ही सच्ची पूँजी है। यह भ्रम नहीं पालना चाहिए कि संसार की व्यवस्था और लोग हमारे अनुकूल बदल जाएँगे। इसके बजाय हमें अपने दृष्टिकोण, अपने व्यवहार और अपनी प्रतिक्रियाओं को बदलना होगा।

जब हम स्वयं में परिवर्तन लाते हैं, तभी दुनिया भी हमें नई दृष्टि से देखती है। संसार में हमें अक्सर दुखद और विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। ऐसे समय में मनुष्य का मन टूटता है, वह व्यथित होता है और अक्सर भाग्य को दोष देता है, लेकिन सच्चाई यह है कि दुःख स्वयं में कोई शक्ति नहीं रखता, हमारी प्रतिक्रिया ही उसे बढ़ा या घटा सकती है।

यूरोपियन इतिहास में एक कथा आती है कि जब स्पेन के मूल निवासी स्पेन से बाहर निकाले गए तो उन्हें बहुत दुःख हुआ, परंतु कुछ विचारशील लोगों ने इस दुःख को एक नए दृष्टिकोण में देखा और कहा—"यदि हमने स्पेन खो दिया है तो क्यों न हम अपने दिलों में एक और स्पेन बसा लें?"

इस तरह उन्होंने अपने दुःख को एक नई रचनात्मक दिशा दे दी। दुःख को दूर करने का उपाय बाहर नहीं, भीतर है। जब तक हमारी दृष्टि विकृत है, तब तक बाहरी सुख भी हमें शांति नहीं दे सकते, लेकिन यदि हम अपने मन का दृष्टिकोण बदल लें; उसे ईश्वरमय, सकारात्मक और सहनशील बना लें तो कोई भी परिस्थिति हमें तोड़ नहीं सकती।

हमें यह समझना होगा कि परिस्थितियाँ तो सदा बदलती रहेंगी, पर हमारी प्रतिक्रिया स्थायी प्रभाव डालती है। इसीलिए मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है—अपने दृष्टिकोण को परिष्कृत करना, आत्मा को मजबूत करना और जीवन को तपोभूमि मानकर हर अनुभव से सीख लेना।

यह विचार 'अगर परिस्थितियाँ बदलें तो जीवन सुखद होगा' पूर्णतया भ्रम है। जीवन तभी सुखद होगा, जब हम अपने भीतर के दृष्टिकोण को दिव्य बना लें।

---

**बिनु सतसंग विवेक न होई।**
**राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥**

***अर्थात बिना सत्संग के विवेक नहीं होता और यह संयोग भी प्रभुकृपा से ही मिलता है।***

---

संसार एक प्रयोगशाला है। यहाँ हर आत्मा को परीक्षा देनी होती है। किसी की परीक्षा परिवार के रूप में आती है, किसी की धन-संपत्ति या मान-सम्मान के रूप में तो किसी की बीमारी, संघर्ष या कष्ट के रूप में, लेकिन इन सबका उद्देश्य एक ही है, हमें भीतर से और अधिक परिष्कृत करना।

जीवन में जो घटता है वह जरूरी नहीं कि हमारे बस में हो, लेकिन हम उस पर कैसी प्रतिक्रिया देते हैं, यह जरूर हमारे हाथ में है। यदि हम प्रत्येक परिस्थिति को एक आध्यात्मिक प्रयोग मानकर स्वीकार करें, तो दुःख भी हमें प्रसन्नता और शांति का मार्ग दिखा सकता है। □

# शरीर है भगवान का मंदिर

मनुष्य जीवन में परिवर्तन और रूपांतरण की शुरुआत कहाँ से, कैसे हो, इस प्रश्न की समुचित प्रेरणा और मार्गदर्शन युग निर्माण सत्संकल्प के दूसरे सूत्र में है। हमने प्रथम सूत्र की चर्चा में देखा कि परमपूज्य गुरुदेव ने प्रत्येक जीवन के उत्कर्ष व कल्याण को दिशाबोध कराने वाले तीन महान आदर्श और मूल्य निर्धारित किए हैं। ये तीन हैं— आस्तिकता का वरण, सत्कर्मों में गति-प्रवृत्ति तथा अंतः-बाह्य जीवन के शोधन-संवर्द्धन का संकल्प।

इन तीन दिव्य प्रेरणाओं को नक्शे की भाँति सामने रखकर जीवन-निर्माण की यात्रा प्रारंभ की जानी है। इन मूल्यों को आत्मसात् करके ही जीवन व्यवहार में अगला कदम आता है और वह है— भव्य जीवन की सुदृढ़ नींव तैयार करना। ठीक वैसे ही, जैसे कि नक्शा बन जाने पर मकान बनाने का शुभारंभ किया जाता है।

सत्संकल्प के पहले सूत्र में परमपूज्य गुरुदेव ने इंजीनियर की भाँति श्रेष्ठतम जीवन का, विश्वमानवता के कल्याण का नक्शा बना कर रख दिया है। अब दूसरा सूत्र उस नक्शे पर नींव तैयार करने का है। इस सूत्र में श्रेष्ठ जीवन के निर्माण में उठाया जाने वाला पहला कदम क्या है, इसका समुचित मार्गदर्शन है।

सत्संकल्प का दूसरा सूत्र है—**'शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।'** शरीर के प्रति दिव्यता और सात्त्विकता की अनुभूति को प्राप्त करना और दीर्घ एवं पूर्ण स्वास्थ्य-आरोग्य प्रदान करने वाली जीवनचर्या का निर्माण करना—ये दो पहलू स्पष्ट रूप से इस सूत्र में प्रकट हैं।

शरीर ही हमारी जीवन-अभिव्यक्ति का एकमात्र आधार है। यह हमारे भीतर बैठी अंतरात्मा का आश्रय स्थल है। इसी आत्मसत्ता के प्रकाश में परमात्मा का साक्षात्कार होता है। शास्त्रों में हमारी आत्मा को ईश्वर का ही अंश कहा गया है। वह परमपिता परमात्मा हम सभी के भीतर आत्मतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित है।

आत्मस्वरूप उस ईश्वरीय प्रकाश की प्रतिष्ठा इस शरीर में होने के कारण ही इसे मंदिर कहा गया है। आदिशास्त्र वेदों में इस शरीर की ज्योतिर्मय पुरुष की निवासस्थली देवनगरी अयोध्या के रूप में महत्ता प्रकट की गई है।

**अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।**
**तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥**

—*अथर्ववेद 10/2/31*

अर्थात इस शरीररूपी नगरी में आठ चक्र और नौ द्वार हैं। यह शरीर दिव्य नगरी अयोध्या है, जिसमें ज्योतिर्मय पुरुष (आत्मा) का वास है। ऐसी सैकड़ों ऋचाएँ, मंत्र, श्लोक, आप्तवचन हमारे शास्त्रों में मौजूद हैं, जो शरीर की दिव्यता, महत्ता को प्रकट करते हैं।

जीवन जीने की सीख देने वाली विविध परंपराओं-मान्यताओं में भी स्वयं के शरीर को साफ, स्वच्छ, पवित्र और स्वस्थ रखने की भावना प्रसारित होती है, लेकिन भोगवादी और भौतिकवादी दृष्टिकोण की व्यापकता ने वर्तमान में शरीर के प्रति मानवीय सोच को अत्यंत सतही और जड़ बना दिया है।

दिव्यता-पवित्रता की भावना तो दूर, सामान्य क्रम में स्वशरीर के प्रति सम्मान का भाव भी तिरोहित नजर आता है। चहुँओर जो दिखाई पड़ता

है, वह यह कि अन्य भौतिक वस्तुओं की भाँति शरीर भी एक भोग की, साज-सज्जा की वस्तु है और इसको सजाने-सँवारने-सँभालने का प्रयोजन केवल भोग-इच्छाओं की पूर्ति का साधन मात्र बनकर रह गया है।

शरीर को आत्मसत्ता की अभिव्यक्ति का साधन न मानकर, भोग्य पदार्थों के उपभोग का भौतिक साधन बनाकर जीवन जीने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर व्यापक हो रही है। यदि इस प्रवृत्ति को नहीं रोका गया तो वह दिन दूर नहीं है, जब अन्य प्राणी जगत् की विलुप्त प्रजातियों की भाँति धरती से यह मानव जीवन भी अस्तित्वविहीन होता दिखाई पड़ेगा।

इस जीवन का सार-स्रोत उसके भीतर बैठी चैतन्य सत्ता आत्मा है। आत्मा इस भौतिक शरीर का मूल है। यह शरीर अपने मूलस्रोत से जितना विमुख होगा, उतना ही शक्तिविहीन, ऊर्जाविहीन और अस्तित्वविहीन होता जाएगा। शरीर धारण करने का उद्देश्य ही आत्मप्रकाश की उपलब्धि और अभिव्यक्ति है। आत्मदेवता की इसमें प्रतिष्ठा है, इसलिए इसे मंदिर कहा गया है। वर्तमान में इसी भावना और प्रवृत्ति को मनुष्य के जीवन में पुनः स्थापित कर देने का पुरुषार्थ करना है।

पूज्य गुरुदेव के इस दूसरे सत्संकल्प में समाहित प्रेरणाओं का प्रथम सोपान यही है कि प्रत्येक मनुष्य अपने शरीर की देख-भाल आत्मदेव का मंदिर समझकर करे और उसके प्रति सदैव दिव्यता व सम्मान, सौभाग्य की भावना से भरा रहे। दूसरा सोपान आत्मसंयम और नियमितता के मानदंड को जीवनचर्या में अपनाकर आरोग्यता को बनाए रखने का है।

आत्मसंयम व नियमितता के अनुबंधों से आरोग्यता का पोषण-संरक्षण तो होता ही है, साथ ही शरीररूपी मंदिर में स्वच्छता, सुंदरता और सात्त्विकता का दिव्य वातावरण भी विनिर्मित होता है।

आत्मसंयम की आवश्यकता शरीर की इंद्रिय प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने के लिए होती है। मनोभाव के रूप में आंतरिक इंद्रियाँ ही शरीर को भौतिक जगत् में कार्य संपादन के लिए उत्प्रेरित करती हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, लालच से लेकर ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार जैसी भावनाएँ शरीर-संरचना को सदैव उद्वेलित और तप्त बनाए रखती हैं। देहरूपी देवालय की पवित्रता और सात्त्विकता में इच्छाओं, कामनाओं, वासनाओं आदि षड्रिपुओं के द्वारा ही गंदगी और दुर्गंधता उत्पन्न होती है।

इन षड्रिपुओं की सफाई आत्मसंयम की झाड़ू से बुहारने पर ही संभव हो पाती है। संयम की झाड़ू पास न हो तो इंद्रियजन्य वृत्तियाँ संपूर्ण देह को अपने अधीन कर निरंतर अपनी इच्छाओं-कामनाओं की पूर्ति-तृप्ति में जुटाए रखती हैं, परंतु दुर्भाग्य यह है कि इन इच्छाओं-कामनाओं की पूर्ति करते-करते देह समाप्त भी हो जाए, तब भी ये ज्यों-की-त्यों बनी रहती हैं।

स्वाद, रस-जीभ पर क्षणिक टिकता है, फिर वही रिक्तता, लालसा पुनः-पुनः होती है। यों ही इंद्रिय वृत्तियों के भोग में देह के साथ ही जीवन-ऊर्जा नष्ट हो जाती है। जीवन-ऊर्जा के क्षीण हो जाने पर यह देहरूपी मंदिर क्षत-विक्षत हो खंडहर बनता जाता है। रोग, शोक, पीड़ा, पतन की दिशा में जीवन की अधोगति अंततः दुर्भाग्य का पर्याय बनकर रह जाती है।

प्राणी समुदाय में धरती के सबसे समझदार और विवेकसंपन्न समझे जाने वाले मनुष्य के जीवन की यह दशा और दिशा अत्यंत व्यथित कर देने वाली है। पूज्यवर के विचारों में केवल आत्मसंयम ही मानव मात्र को ऐसी विडंबनाओं से बचाकर जीवन के सही मार्ग पर डटे रहने की शक्ति प्रदान कर सकता है।

आत्मसंयम द्वारा ही इंद्रियजन्य वृत्तियों पर विजय प्राप्त कर जीवन को अधोगति से उत्कर्ष के

मार्ग पर लाया जा सकता है। जीवन में आत्मसंयम को साधने का उपाय भी अत्यंत सीधा और सरल है। इसके लिए विवेक और इच्छाशक्ति-बस इन्हीं दो ही चीजों की आवश्यकता होती है, जिन्हें परमात्मा ने समान रूप से सभी मनुष्यों को, उनके जन्म के साथ ही देकर धरती पर भेजा है।

विवेक की क्षमता मनुष्य के औचित्यपूर्ण और सही निर्णय, सही दिशा, सही मार्ग-चयन के लिए है तथा इच्छाशक्ति उस निर्णय तथा मार्ग पर अडिग, अटल बने रहने के लिए है। थोड़ी-सी समझदारी और थोड़ा-सा संकल्प-बल प्रयोग कर प्रत्येक मनुष्य आत्मसंयम और उसके परिणामों को अपने जीवन में चरितार्थ कर सकता है।

ध्यान रहे कि आत्मसंयम से जीवन को संचालित करने वाली, शरीर की समस्त क्रियाशीलता का आधार कही जाने वाली सभी बाह्य और आंतरिक इंद्रियों की दिशा अंतरस्थ आत्मदेवता की ओर हो जाती है। एक बार आत्मा की ओर दृष्टि हो जाने से धीरे-धीरे इंद्रियजन्य वृत्तियों के बाह्य संसार के भोग विषय क्षीण होते जाते हैं और यह देवदुर्लभ मनुष्य जीवन ईश्वरत्व की अनुभूति से सर्वथा प्रकाशित हो उठता है।

इसी अवस्था को पूज्य गुरुदेव ने 'मनुष्य में देवत्व का उदय' कहा है। यहाँ शरीर केवल आत्मदेवता के प्रकाश का माध्यम मात्र होता है, न कि इंद्रियजन्य इच्छाओं-भोगों का गुलाम। शरीर के प्रति ऋषि परंपरा का यही सनातन दिव्य भाव रहा है—**'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।'**

आत्मसंयम के लिए कोई समय-अवधि निर्धारित नहीं है, अपितु यह तो जब तक शरीर और जीवन धरती पर मौजूद हैं, तब तक के लिए अपनाए रखने वाला उपाय है।

पूज्य गुरुदेव ने मनुष्य को आत्मसंयम के साथ नियमितता का सूत्र इसलिए ही समझाया है। आत्मसंयम और नियमितता, दोनों की संयुक्ति से यह शरीररूपी आत्मा का मंदिर जीवंत, जाग्रत और शक्तिपुंज बना रहता है। आरोग्य इसी अवस्था को कहा गया है।

शरीर का प्रत्यक्ष धर्म है—कर्म करना। निरंतर जन्म से मृत्युपर्यंत इसके अंग-अवयव, कोशिका-अणु गतिशील रहते हैं। प्रकृति ने इसमें लयबद्धता और आरोग्य बनाए रखने के लिए निद्रा, विश्रांति, शिथिलता जैसी अनेक विशिष्ट क्षमताओं से इसे युक्त किया है।

इन विशिष्ट क्षमताओं के सहयोग से यह शरीर स्वयं के अस्तित्व के लिए ऊर्जा, शक्ति आदि जीवन-तत्त्वों का निर्माण और उपयोग स्वयमेव करता है। निद्रा, विश्रांति आदि कालों में स्वयं ही आंतरिक अवयवों, सूक्ष्मग्रंथियों आदि की स्वच्छता, मरम्मत और कमी-कमजोरी की पूर्ति कर लेता है।

**'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे'** के आधार पर ब्रह्मांड की समस्त शक्तियों के अंश इस शरीर में विद्यमान हैं और आवश्यकता अनुसार इन शक्तियों को उपयोग करने की सामर्थ्य भी उपलब्ध है। आरोग्य को प्राप्त हुआ यह शरीर जब स्वस्थ, सक्रिय और ऊर्जावान रहता है तो बाह्य रूप से कांतिमय, तेजस्वी और आभायुक्त दिखाई देता है।

इसमें अंतरंग में बहने वाले प्राण, प्राण में घुले विचार, भाव, स्पंदन, अनुभूति सब मिलकर जीवन को सर्वत्र सुख, शांति और आनंद से भर देते हैं। दुर्भाग्य से आज मानव जीवन से यही चीजें बिसरी हुई हैं। सुख, शांति, आनंद का स्थान दुःख, अशांति और पीड़ा ने ले लिया है। सत्संकल्प का यह सूत्र इसी समाधान की प्रेरणा देता है। आरोग्य की प्राप्ति से सब समाधान निकल आते हैं।

आरोग्य का अर्थ ही है 'अ' रोग अर्थात रोगरहित। शास्त्र-सिद्धांतों में त्रिताप तीन तरह के

रोग बताए गए हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। इन त्रितापों का निवारण बिना आरोग्य की प्राप्ति के संभव नहीं है। इसी के लिए आत्मसंयम और नियमितता के उपाय कहे गए हैं।

नियमितता अर्थात शरीर, प्राण एवं विचारों के पोषण, संरक्षण एवं शोधन के क्रियाकलापों का नियम की तरह पालन करना। जीवनचर्या के नियमों में व्यतिरेक न हो, इसका ध्यान रखना। शयन, जागरण, भोजन, व्यायाम, ध्यान, जप, तप आदि जीवन की अपरिहार्य गतिविधियों-कार्यों को एक निश्चित समय-अंतराल पर नियम की तरह संपन्न करना।

प्रत्येक शरीर की संरचना एवं स्थिति एकदूसरे से सर्वथा भिन्न होती है। विचारों और भावों के अंतर्संबंध से यह संरचना और भी ज्यादा विशिष्ट हो जाती है, जिसकी अनुभूति केवल स्वयं को ही रहती है। अत: अपने शरीर, मन की स्थिति, प्रकृति को ध्यान में रखकर ही जीवनचर्या के नियम बनाने और अपनाने चाहिए। एक बार यदि नियम बन जाए तो फिर जीवन में नियमितता का अनुशासन प्राप्त करना सहज हो जाता है।

नियमों के प्रति सजगता और संकल्प बल से नियमितता का प्रवाह अनवरत बना रहता है। सजग नहीं रहेंगे तो जीवनचर्या की जरूरी बातें विस्मृत होने लगेंगी और संकल्प-बल नहीं होगा तो दृढ़ता और निरंतरता नहीं बनी रहेगी। अत: दोनों की सहायता से ही नियमितता का निर्वाह संभव होता है।

देश-काल-परिस्थिति के अनुरूप जीवन की अपरिहार्य-आवश्यकताओं के क्रम में निरंतरता बनाए रखना ही नियमितता का सार है। सत्संकल्प का यह दूसरा सूत्र आरोग्यप्राप्ति के मार्मिक परंतु सुगम उपयोग को लेकर प्रस्तुत है।

सामान्य जीवन में व्यक्ति अपने आरोग्य के प्रति इतने सजग, जिम्मेदार और सम्मान से भरे नहीं होते और मनमाने ढंग से निरंतर इसकी सहजता, गति एवं लय में अपने आहार-विहार से गतिरोध उत्पन्न करते रहते हैं।

जीवन के शरीरादि अंग-प्रत्यंग भी एक सीमा तक तो सहन करते हैं, परंतु जब अस्त-व्यस्तता, अनियमितता की अति या अधिकता हो जाती है, तो इनकी नैसर्गिक क्षमताएँ भी जवाब देने लगती हैं। फलस्वरूप रुग्णता, कमजोरी, क्षीणता आदि के रूप में अनेक विकृतियाँ दिखाई देने लगती हैं।

ये विकृतियाँ-रोग अपने साथ गहन पीड़ा, कष्ट और दरद की अनुभूतियाँ भी साथ लाते हैं, जिससे जीवन जीते-जीते ही नारकीय वेदना का पर्याय बन बैठता है।

यदि समय रहते उचित प्रयास, उपचार, संयम आदि से इन हावी हुए रोगों को न सँभाला गया तो यह संपूर्ण अस्तित्व को ही नष्ट कर समय से पूर्व ही पंचभूतों में विलीन कर देने पर उतारू हो जाते हैं। पूर्ण आयु के बीच में ही जीवन-लीला की समाप्ति हो जाती है।

यही कारण है कि शास्त्रों में किसी भी रोग को छोटा न समझने की नसीहत दी गई है। अत: ध्यान रखने योग्य तथ्य यही है कि यदि जीवन है और हम अपने जीवन के प्रति गौरव और सम्मानजनक भाव से भरे हैं, तो फिर जीवन का पहला मूल्य है—आरोग्य। पहला सुख निरोगी काया। आरोग्य एक वरदान है प्रकृति का, जिसमें साक्षात् परमात्मा का दिव्य प्रकाश प्रतिबिंबित होता है।

पूर्ण स्वस्थ, आरोग्यप्राप्त, दीर्घायु जीवन में चहुँओर सुख, आनंद, प्रसन्नता के पुष्प खिलते हैं और उसकी सुगंधि और आभा सर्वत्र वातावरण को ऊर्जावान और दिव्यता से भर देती है। ऐसा आत्मनिष्ठ आरोग्यमय जीवन ही धरती पर देवत्व का पर्याय है। ऐसे जीवन में प्रकृति और परमात्मा का प्रकाश और वरदान श्रेष्ठता बनकर प्रत्यक्ष हो उठते हैं। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—204

# यौगिक अभ्यासों का किशोरों पर प्रभाव

विद्यार्थी जीवन के संतुलित, विकसित और क्षमतावान होने मात्र से जीवन की सफलता और सार्थकता का मार्ग सुलभ हो जाता है। यह संपूर्ण जीवन का अत्यंत संवेदनशील परंतु महत्त्वपूर्ण पड़ाव होता है। इस पड़ाव पर किसी प्रकार की समस्या या बाधा उत्पन्न हो जाने का प्रभाव व्यक्तित्व की कमजोरियों-विकृतियों के रूप में जीवनभर साथ बना रहता है। अतः विद्यार्थी जीवन को सँभालने, सँवारने तथा विकसित बनाए रखने की सदैव आवश्यकता रहती है।

वर्तमान में किशोरवय के विद्यार्थियों में अनेक तरह की व्यक्तित्व संबंधी समस्याओं के लक्षण दिखाई देते हैं। भावनात्मक व व्यवहार संबंधी गतिविधियों में ऐसी समस्याओं की झलक गंभीर चिंता का विषय है। अभिभावक एवं शिक्षक वर्ग भी किशोरों की इन व्यवहार संबंधी परेशानियों और भावनात्मक समस्याओं को लेकर चिंतित दिखाई पड़ते हैं।

स्वयं विद्यार्थी भी कार्यक्षेत्र के समायोजन और सामाजिक चुनौतियों के बीच चिंताग्रस्त होते जाता है तथा संबल के रूप में प्रेरणा स्रोतों व नैतिक मूल्यों का जीवन में अभाव उनकी समस्याओं को और ज्यादा बढ़ा देता है। ऐसे में इस दिशा में समय रहते सार्थक समाधान प्रस्तुत करना समय की महती आवश्यकता है। इस संदर्भ में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योग विज्ञान एवं मानव चेतना विभाग के अंतर्गत एक उल्लेखनीय शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है।

यह अध्ययन विद्यार्थी जीवन की सामान्य चिंताओं व इसके कारकों की जानकारी प्रस्तुत करने के साथ ही नैतिक मूल्यों और विद्यार्थी प्रेरणाओं के अंतर्संबंधों को तथ्यात्मक रूप में उजागर करने वाला महत्त्वपूर्ण कार्य है।

यह विशिष्ट शोधकार्य वर्ष—2022 में शोधार्थी ममता द्विवेदी द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० कामता प्रसाद साहू के निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

इस शोध अध्ययन का विषय है—**'इफेक्ट ऑफ सलेक्टेड यौगिक प्रैक्टिसेस एंड मोटिवेशनल लेक्चर्स ऑन मोरल वैल्यूस एंड जनरल एंग्जायटी ऑफ एडोलिसेन्स।'** वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक रीति से संपन्न किए गए इस अध्ययन को शोधार्थी ने कुल पाँच अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया है।

शोध के प्रयोगात्मक पहलू को पूर्ण करने के लिए उत्तर प्रदेश के कानपुर शहर से 'स्टेपिंग स्टोन इंटर कॉलेज' के 200 विद्यार्थियों को आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयनित किया गया था। इन सभी विद्यार्थियों की आयु 17 से 18 वर्ष थी एवं कक्षा 11वीं एवं 12वीं में अध्ययनरत थे। चयन के उपरांत शोधार्थी द्वारा समान संख्या में विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह में वर्गीकृत किया गया।

प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनित विद्यार्थियों का शोध-उपकरणों की सहायता से स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। परीक्षण हेतु जिन शोध-उपकरणों को प्रयुक्त किया गया, वे हैं—(1) विद्या भारती प्रकाश (2000) द्वारा विकसित

नैतिक मूल्य परीक्षण एवं (2) डॉ० अनिल कुमार (2003) द्वारा विकसित जनरल एन्जाइटी स्केल फॉर एडोलिसेंस।

परीक्षण के पश्चात 45 दिनों तक शोधार्थी द्वारा नियमित यौगिक प्रक्रियाओं एवं प्रेरक व्याख्यानों का अभ्यास शोध के प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों को कराया गया। इस प्रात:कालीन यौगिक अभ्यास की कुल समय-अवधि 30 मिनट निर्धारित रखी गई थी।

प्रयोगात्मक अभ्यास में जिन योग तकनीकों को शोध में सम्मिलित किया गया; वे हैं—

(1) सूर्य नमस्कार (गत्यात्मक) एक चरण, अवधि-2 मिनट,

(2) सूर्य नमस्कार (स्थिर), एक चरण, अवधि-3 मिनट,

(3) नाड़ी शोधन प्राणायाम, दस चरण, अवधि-5 मिनट,

(4) ओम् उच्चारण, दस चरण, अवधि-5 मिनट,

(5) भ्रामरी प्राणायाम, दस चरण, अवधि-5 मिनट,

(6) प्रेरक व्याख्यान, अवधि-10 मिनट।

शोध प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की भाँति सभी विद्यार्थियों का पुन: स्वास्थ्य परीक्षण कर आँकड़े एकत्रित किए गए। शोध परीक्षण से प्राप्त आँकड़ों, तथ्यों एवं जानकारियों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में शोधार्थी ने यह पाया कि चयनित यौगिक अभ्यास एवं प्रेरक व्याख्यानों का किशोरों के सामान्य चिंता स्तर एवं नैतिक मूल्यों पर सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है।

अत: कहा जा सकता है कि चिंता जैसी गंभीर समस्या के जैविक उपचार के साथ प्रभावी विकल्प के रूप में अत्यंत कारगर सिद्ध हो सकता है। विशिष्ट चिंता विकारों वाले लोगों के लिए भी आसन, प्राणायाम, क्रियाएँ, प्रार्थना आदि विभिन्न योग-व्यायामों की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर भी शोध की आवश्यकता प्रतीत होती है।

इस अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट है कि सूर्य नमस्कार, नाड़ी शोधन प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम, प्रेरक व्याख्यानों के साथ ॐ का जप करने से किशोरों के विचार, कार्य और व्यवहार में सकारात्मक संशोधन कर पाना संभव है। ये तकनीकें एवं अभ्यास किशोरवय पर प्रभावी सिद्ध हुए हैं।

इस शोध के आँकड़े दरसाते हैं कि किशोरों की सामान्य चिंता और नैतिक मूल्यों के बीच एक महत्त्वपूर्ण संबंध होता है अर्थात जो किशोर उच्च स्तर की चिंता-समस्या से ग्रस्त हैं, उनमें नैतिक मूल्यों का स्तर निम्न पाया जाता है; जबकि कम चिंता स्तर के किशोरों में उच्च नैतिक मूल्य प्रदर्शित होते हैं।

वस्तुत: नैतिक मूल्य हमारे विचार, चिंतन, व्यवहार और कार्यों को निर्धारित एवं अनुशासित करते हैं। इनके जीवन में आने से परिवार, समाज और अपने प्रिय लोगों में हमारा व्यवहार एवं व्यक्तित्त्व उत्कृष्ट दिखाई देता है।

योग आदि अध्यात्म शास्त्रों में भी यम, नियम, आचरण-शुद्धि जैसे अनेक अनुबंधों के पालन करने के पश्चात ही अन्य साधनाओं, तपश्चर्याओं का महत्त्व बताया गया है। साधारण जीवन में तो नैतिक मूल्य चरित्र-निर्माण एवं अभिव्यक्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

इस शोध अध्ययन की अवधारणा एवं परिणाम स्पष्ट संकेत देते हैं कि किशोरों के लिए भी नैतिक मूल्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं व्यक्तित्व निर्माण को सीधे प्रभावित करने वाले होते हैं। उच्च नैतिक मूल्यों वाला किशोर स्वयं को सुरक्षित, उत्साही, साहसी, आत्मविश्वासी, सहज और सुव्यवस्थित

बनाए रखते हुए सरलता से सफलता की ओर अग्रसर होता है।

ऐसे किशोरों का व्यक्तित्व भी सभी के बीच प्रभावी होता है; जबकि अनैतिक मूल्यों वाला किशोर व्यक्तित्व विकृति की समस्याओं से ग्रस्त रहता है। अतः योग जैसी सर्वसुलभ प्रक्रियाओं से किशोरों के नैतिक मूल्यों को उच्च बनाए रखने का उपाय वर्तमान संदर्भ में अत्यंत अनुकूल और सार्थक प्रतीत होता है।

इस शोध में योगाभ्यास के साथ-साथ प्रेरक व्याख्यानों को भी सम्मिलित किया गया है। प्रेरक व्याख्यान यौगिक प्रभावों को कई गुना ज्यादा प्रभावी बना देते हैं। ये मन में प्रेरणा, संकल्प, सकारात्मकता, साहस, इच्छाशक्ति, दृढ़ता जैसे गुणों के विकास में अत्यंत सहायक सिद्ध होते हैं।

योग व्यक्तित्व का शोधन, संवर्द्धन करता है तो व्याख्यान जीवन की दिशा को सही रूप में गतिशील बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार संपूर्ण जीवन उचित रीति से सफलता और सार्थकता की दिशा में अग्रसर बनता है। शोधार्थी ने इन दोनों पहलुओं को सम्मिलित कर एक प्रभावी उपाय के रूप में किशोर-जीवन के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त किया है।

उल्लेखनीय है कि इस शोध में सम्मिलित सभी योग अभ्यास की तकनीकें स्वतंत्र रूप से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण और जीवन में सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने वाली हैं। जैसे सूर्य नमस्कार का नियमित अभ्यास शरीर व मन में स्फूर्ति, ताजगी, उत्साह और आरोग्य प्रदान करने की प्रभावी तकनीक है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक व्यक्तित्व पर समान रूप से इस अभ्यास के सकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं।

शोध-निष्कर्षों में भी पाया गया है कि यह अभ्यास अंतःस्रावी संचार, श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र सहित शरीर संचालन की सभी प्रणालियों को सुचारु और संतुलित बनाता है।

इसी प्रकार नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास शरीर के नाड़ी संस्थान की शुद्धि कर प्राण-प्रवाह को संतुलित करने वाला एवं आंतरिक व्यक्तित्व में जागरूकता उत्पन्न करने वाला महत्त्वपूर्ण यौगिक प्रयोग है।

इसी क्रम में ॐ मंत्र का जाप-उच्चारण भी योगाभ्यास की एक उच्चस्तरीय तकनीक है। ॐ का जाप सुप्त ऊर्जा-केंद्रों को जाग्रत करने तथा मनोभावों की शुद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तनाव और चिंता के समाधान में इसके प्रभाव देखे गये हैं।

ॐ की भाँति भ्रामरी प्राणायाम भी तनाव, चिंता, चंचलता, आवेश जैसे विकारों को शांत करने की प्रभावी तकनीक मानी जाती है। ये दोनों अभ्यास मिलकर मन-मस्तिष्क को शांत, गहन चिंतनशील तथा विकसित बनाते हैं।

---

**आध्यात्मिकता द्वंद्वों से परे होती है और इसके लिए सबसे अधिक आवश्यकता होती है एक सच्ची ऊर्ध्वमुखी अभीप्सा की।**

***— महर्षि अरविंद***

---

शास्त्रों में योग की उच्चस्तरीय उपलब्धियों में इनकी भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी गई है। उक्त सभी विशिष्ट योग-अभ्यास की तकनीकों को सम्मिलित करने से ही इस शोध-अध्ययन के परिणामों में सकारात्मकता एवं सार्थकता दिखाई देती है।

योगाभ्यास का व्यक्तित्वजन्य समस्याओं के प्रबंधन में उपयोग को सभी स्वीकारते हैं, परंतु यह अध्ययन विशेष रूप से किशोरवय के व्यक्तित्व व व्यवहार संबंधी समस्याओं को लक्ष्य कर समाधान की दिशा में एक सार्थक विकल्प प्रस्तुत करता है। ❑

युगगीता – 310

# बिना सोचे, बिना विचारे कार्य करता है तमोगुणी मनुष्य

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की पच्चीसवीं किस्त)

**[ इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के चौबीसवें श्लोक की व्याख्या की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन को राजस कर्मों का स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त होता है तथा भोगों को चाहने वाले पुरुष या अहंकारी पुरुष द्वारा किया जाता है—वह कर्म राजस कहा गया है। यह कहने का आशय यह है कि जब कर्म करने के पीछे की भावना यह है कि यह करने के बदले हमें ऐश्वर्य मिलेगा, आदर-सम्मान-प्रतिष्ठा मिलेगी, तब वह कर्म राजसिक कर्म कहलाता है। इसी के साथ ही भगवान शब्द प्रयोग करते हैं कि 'साहंकारेण' जिस कर्म को करने के पीछे अभिमान का, अहंकार की पूर्ति का भाव हो—वह कर्म उसमें निहित आकांक्षा के कारण राजसिक कर्म बन जाता है। यहाँ भगवान के वक्तव्य का उद्देश्य स्पष्ट है कि क्या किया गया, उससे ज्यादा महत्त्व इस बात का है कि किस भाव से किया गया? यदि भाव विकृत है तो चाहे कर्म दिखने में सात्त्विक ही क्यों न दिखाई पड़ता हो—परिणाम में राजसिक परिणाम ही लाता है।**

**यह कहने के साथ ही भगवान कृष्ण कहते हैं कि 'वा पुनः' अर्थात भविष्य में मिलने वाले फल को लेकर कर्म किया जाए या वर्तमान में अहंकारपूर्वक कर्म किया जाए—इन दोनों में से कोई-सा भी एक भाव यदि कर्म करने का आधार बन जाए तो वह कर्म राजसिक हो जाता है। इसी के साथ श्रीभगवान कहते हैं कि जिस कर्म को बहुत परिश्रम से किया जाए 'क्रियते बहुलायासम्' वो कर्म भी राजसिक होता है, क्योंकि उसका कारण सुख-भोग का संग्रह होता है। श्रीभगवान अर्जुन को ऐसे कर्मों से सावधान रहने को कहते हैं। ]**

इसके उपरांत श्रीभगवान कहते हैं कि—

**अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।**
**मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते॥ 25॥**

**शब्दविग्रह**—अनुबंधम्, क्षयम्, हिंसाम्, अनवेक्ष्य, च, पौरुषम्, मोहात्, आरभ्यते, कर्म, यत्, तत्, तामसम्, उच्यते॥

**शब्दार्थ**—जो (**यत्**), कर्म (**कर्म**), परिणाम (**अनुबन्धम्**), हानि (**क्षयम्**), हिंसा (**हिंसाम्**), और (**च**), सामर्थ्य को (**पौरुषम्**), न विचार कर (**अनवेक्ष्य**), केवल अज्ञान से (**मोहात्**), आरंभ किया जाता है (**आरभ्यते**), वह कर्म (**तत्**), तामस (**तामसम्**), कहा जाता है (**उच्यते**)।

अर्थात जो कर्म मोहासक्त होकर और अपनी क्षमता का आकलन, परिणामों, हानि और दूसरों की क्षति पर विचार किए बिना आरंभ किए जाते हैं—वे तमोगुणी कर्म या तामसिक कर्म कहलाते हैं।

भगवान कृष्ण का कथन यहाँ पर स्पष्ट है कि जिनकी बुद्धि पर अज्ञान का आवरण चढ़ा है, वे इस विवेक से विहीन होते हैं कि क्या उचित है और क्या अनुचित? इनके संबंध में या तो वे असावधान होते हैं अथवा उदासीन। ऐसे व्यक्तित्व मात्र स्वयं

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

में और अपने व्यक्तिगत स्वार्थों में अभिरुचि रखते हैं। इसीलिए यहाँ भगवान कृष्ण ने '**क्षयं**' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ क्षीण है अर्थात तामसिक कर्म, करने वाले व्यक्ति के स्वास्थ्य और शक्ति के क्षीण होने का कारण भी बनते हैं।

यहाँ भगवान कृष्ण कहते हैं कि '**अनुबन्धम्**' अर्थात तामसिक कर्म करने वाला मनुष्य परिणाम की, कर्म करने के बाद मिलने वाले परिणाम की भी परवाह नहीं करता। राजसिक कर्म करने वाला व्यक्ति भले ही इच्छा के वशीभूत होकर कर्म को करे, पर उसे परिणाम की चाहत होती है। आदर, प्रतिष्ठा, अहंकारपूर्ति ही सही, पर परिणामप्राप्ति का भाव उसके मन में होता है, परंतु तामसिक कर्म वाला तो परिणाम के प्रति पूर्णरूपेण उदासीन होता है। उसके कर्म करने से दूसरों का अहित होता हो अथवा हानि होती हो—इससे वह पूर्णतया अप्रभावित रहता है।

इसीलिए श्रीभगवान कहते हैं कि '**हिंसाम्**' अर्थात उसके द्वारा अपेक्षित कर्म का परिणाम भले ही हिंसात्मक निकले, उसका स्वयं का पतन हो, इस सबकी उसे तनिक भी चिंता नहीं होती है। इसीलिए पातंजलिकृत योगसूत्र में महर्षि पतंजलि ने साधनपाद में साधकों को सचेत किया है कि यदि तामसिक विचार; यथा हिंसा आदि के विचार मन में आते हैं तो ये विचार करना चाहिए कि ऐसे विचारों का क्या परिणाम निकल सकता है। महर्षि पतंजलि (योगसूत्र-2/34) कहते हैं—

**वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ 34 ॥**

अर्थात हिंसा करने जैसे विचार आने पर कृत, कारित और अनुमोदित, लोभ, क्रोध और मोहपूर्वक तथा मृदु, मध्य और अधिमात्र, दुःख और अज्ञानरूपी अनंत फल देने वाले होते हैं। इस प्रकार के विरोधी विचार की भावना करनी चाहिए।

कहने का आशय यह है कि किए जाने वाले कर्म के परिणाम की चिंता करनी चाहिए, परंतु तामस कर्म करने वाला उस परिणाम की भी परवाह नहीं करता है।

ऐसा करते समय वह यह परवाह भी नहीं करता है कि इस कार्य को करने हेतु मेरे पास कितनी क्षमता है, प्रतिभा है या पुरुषार्थ है—'**अनवेक्ष्य च पौरुषम्**'। वह यह सब देखे बिना ही कार्य करना आरंभ कर देता है।

सारांश में तमोगुण के प्रभाव से युक्त मनुष्य कर्म करते समय उसके परिणाम, उससे होने वाले नुकसान, प्रभाव एवं स्वयं की सामर्थ्य का, उचित-अनुचित का ध्यान न रखते हुए—जैसा मन करे, वैसा कर्म कर गुजरता है। इस तरह के कर्म तामसिक कर्म कहलाते हैं। ❑

---

**तीर्थस्थल पर पर्यटन करने आए लोगों को देखकर संत हँसे तो शिष्यों ने कारण पूछा। संत बोले—"मनुष्य भी कितना अभागा है। वह जगत् तो देखना चाहता है, पर यह जगत् जिसने बनाया है, उसे नहीं देखना चाहता। पहाड़, नदियाँ देखे नहीं देखे तो क्या? पर यदि उसे देख लिया, जिसने संपूर्ण सृष्टि का निर्माण किया है तो जैसे सब देख लिया।"**

**सत्य यही है कि मनुष्य व्यर्थ के उपक्रमों में जीवन का सार भूल जाता है।**

# जीवन-विद्या की ज्योति जलाता विश्वविद्यालय

वंदनीया माताजी के जन्मशताब्दी वर्ष के पावन अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय उनकी संकल्पना को सजीव रूप देने वाले एक अद्वितीय केंद्र के रूप में राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विशेष ध्यान आकर्षित कर रहा है। मूल्य-आधारित शिक्षा, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और वैज्ञानिक अध्यात्म को समर्पित यह विश्वविद्यालय न केवल पूज्य गुरुदेव के आदर्शों का प्रतिरूप है, बल्कि आज के समय की आवश्यकताओं के अनुरूप एक सशक्त शैक्षणिक मॉडल भी प्रस्तुत करता है।

शताब्दी वर्ष के कार्यक्रमों के दौरान देश-विदेश के राज्यपालों, मंत्रियों, कुलपतियों, विशेषज्ञों तथा दूतावास प्रतिनिधियों सहित अनेक विशिष्टजनों का यहाँ आगमन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय अब वैचारिक उत्थान और सांस्कृतिक संवर्द्धन के क्षेत्र में एक प्रभावशाली प्रेरणाकेंद्र बन चुका है।

आगामी वर्ष विश्वविद्यालय को ऋषियुग्म की उस विरासत का पुनः स्मरण कराता है, जो उज्ज्वल चरित्र, उज्ज्वल विचार और उज्ज्वल विश्व की दिशा में मानवता को मार्गदर्शन प्रदान करती है। इसी क्रम में विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में केंद्रीय शिक्षा मंत्री, श्री धर्मेंद्र प्रधान जी का विश्वविद्यालय आगमन हुआ।

प्रतिकुलपति जी द्वारा उनके स्वागत के उपरांत आयोजित विशेष संवाद सत्र में विश्वविद्यालय की वैचारिक धारा, मूल्य-आधारित शिक्षा, योग-विज्ञान तथा भारतीय ज्ञान-परंपरा पर विस्तृत परिचर्चा हुई। इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नवीन पहलों, शोधगत प्रगतियों तथा वैश्विक स्तर पर हो रहे शैक्षणिक सहयोगों की जानकारी विस्तार से प्रदान की।

उन्होंने बताया कि विश्वविद्यालय किस प्रकार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय चिंतन, अध्यात्म, विज्ञान और संस्कारों को एकीकृत करते हुए अपना विशिष्ट योगदान दे रहा है। माननीय शिक्षा मंत्री जी ने शिक्षापद्धति में आध्यात्मिकता, नैतिकता और भारतीय संस्कृतियों के समन्वय के प्रयासों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

उन्होंने कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय का कार्य भारतीय शिक्षा परंपरा को पुनर्स्थापित करने वाला है और यह मॉडल संपूर्ण देश के लिए प्रेरणादायी सिद्ध हो सकता है।

गणमान्यों के आगमन के क्रम में बीते दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के दिव्य परिसर में स्वामी धर्मबंधु जी का शुभ आगमन हुआ। स्वामी धर्मबंधु जी राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार बोर्ड के सदस्य, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) कार्यदल के अध्यक्ष तथा वैदिक मिशन ट्रस्ट के प्रमुख हैं। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने पुष्पगुच्छ भेंट कर उनका हार्दिक स्वागत एवं सम्मान किया।

संवाद के दौरान परमवंदनीया माताजी की जन्मशताब्दी तथा दिव्य अखंड दीपक शताब्दी वर्ष 2026 के उपलक्ष्य में प्रस्तावित व्यापक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रमों, योजनाओं तथा विविध पहलुओं पर विस्तार से चर्चा हुई। इस संवाद में भावी आयोजनों के उद्देश्य, स्वरूप और प्रभावी

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

क्रियान्वयन के विभिन्न आयामों पर भी सारगर्भित विमर्श हुआ।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पावन परिसर में राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री शिव प्रकाश जी, विधायक श्री मदन कौशिक जी, विधायक श्री आदेश चौहान जी तथा हरिद्वार के जिलाध्यक्ष जी का आगमन हुआ।

उनके आगमन उपरांत विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने सभी अतिथियों का हार्दिक स्वागत एवं अभिनंदन किया। भेंट-वार्त्ता के क्रम में आगामी प्रमुख कार्यक्रमों, परमवंदनीया माताजी के जन्मशताब्दी वर्ष, अखंड दीपक के शताब्दी वर्ष तथा विभिन्न वैश्विक एवं राष्ट्रीय समस्याओं पर सारगर्भित चर्चा हुई। अंत में, प्रतिकुलपति जी ने पूज्य गुरुदेव द्वारा रचित 'नवयुग का संविधान' भेंट कर माननीय अतिथियों का सम्मान किया।

वैश्विक वित्तीय जगत् के प्रतिष्ठित व्यक्तित्व, इलारा कैपिटल समूह के चेयरमैन एवं सीईओ श्री राज भट्ट जी का भी बीते दिनों विश्वविद्यालय परिसर में स्वागत किया गया।

अपने इस विशेष दौरे के दौरान, श्री भट्ट ने विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंट की। इस अवसर पर मूल्य-आधारित नेतृत्व, नैतिक वित्तीय प्रणाली तथा उत्तरदायी वैश्विक व्यापार में अध्यात्म की भूमिका जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर सारगर्भित एवं प्रेरणादायी चर्चा हुई।

सन् 2002 में स्थापित इलारा कैपिटल के संस्थापक के रूप में, श्री भट्ट अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों में भारत की उपस्थिति को सुदृढ़ करने और वित्तीय नवाचार को नई दिशा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में हरिद्वार प्रेस क्लब के अध्यक्ष एवं इंडिया न्यूज़ के वरिष्ठ पत्रकार, हरिद्वार प्रेस क्लब के संस्थापक सदस्य एवं शहर के वरिष्ठ पत्रकार ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से सौजन्य भेंट की।

इस संवाद के दौरान परमवंदनीया माताजी की जन्मशताब्दी तथा दिव्य अखंड दीपक के शताब्दी वर्ष--2026 के अवसर पर संचालित व्यापक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रमों एवं योजनाओं पर विस्तृत और सार्थक चर्चा हुई। मीडिया जगत् के इन अनुभवी प्रतिनिधियों ने समाज-उद्बोधन, मूल्य-संवर्द्धन और सकारात्मक पत्रकारिता में गायत्री परिवार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योगदान की प्रशंसा की।

उन्होंने कहा कि वर्ष 2026 में आयोजित होने जा रहा परम वंदनीया माताजी का जन्म-शताब्दी महोत्सव एवं अखंड दीपक के प्राकट्य के शताब्दी वर्ष का महा-आयोजन राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना और आध्यात्मिक पुनर्जागरण का नया अध्याय सिद्ध होगा।

**संत से शिष्यों ने प्रश्न किया कि दूसरों को उपदेश देते समय क्या कहना चाहिए? संत बोले—"दूसरों को उपदेश देने के बजाय यदि कोई भक्तिपूर्वक ईश्वर की आराधना करे तो यही पर्याप्त उपदेश है। जो अपने को मुक्त करने का प्रयास करता है, वही सच्चा उपदेशक है।"**

विगत दिनों बेलारूस से आए एक प्रतिष्ठित प्रतिनिधिमंडल ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय का भ्रमण किया। प्रतिनिधिमंडल ने विश्वविद्यालय में मूल्य-आधारित शिक्षा, वैज्ञानिक अध्यात्मवाद, योग एवं भारतीय संस्कृति की शिक्षापद्धति का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया।

अपने भ्रमण के दौरान प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों ने विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से

भेंट की। अतिथियों ने विश्वविद्यालय द्वारा संचालित योग, ध्यान तथा रूपांतरणकारी पहलों की सराहना की। उन्होंने शांत एवं प्रेरणादायी शिक्षण के वातावरण की विशेष प्रशंसा करते हुए कहा कि यहाँ की जीवनशैली और समग्र शिक्षा व्यवस्था अत्यंत प्रभावशाली है।

हाल ही में कैरियर पॉइंट विश्वविद्यालय, हमीरपुर (हिमाचल प्रदेश) के विद्यार्थियों का शैक्षणिक अध्ययन भ्रमण देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संपन्न हुआ। विद्यार्थियों ने विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण कर विभिन्न शैक्षणिक, शोध तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को निकट से समझा।

सभी विद्यार्थियों एवं शिक्षक दल के सदस्यों ने प्रतिकुलपति जी से भेंट कर उनका मार्गदर्शन प्राप्त किया। विश्वविद्यालय के दिव्य, शांत एवं प्रेरणादायी वातावरण ने आगंतुक विद्यार्थियों पर गहरा प्रभाव छोड़ा। उन्होंने यहाँ की व्यवस्थाओं, अनुशासन तथा आध्यात्मिक परिवेश की सराहना करते हुए भविष्य में पुनः आने की अपनी हार्दिक अभिलाषा व्यक्त की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आयोजित होने वाले आयोजनों के क्रम में पूरक एवं वैकल्पिक चिकित्सा विभाग द्वारा विगत दिनों राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा दिवस के उपलक्ष्य में एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस अवसर पर प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति जन-जागरूकता बढ़ाने तथा इसे दैनिक जीवन में अपनाकर रोग-मुक्त एवं दवाइयों से परे स्वस्थ जीवनशैली विकसित करने का संदेश दिया गया।

कार्यक्रम में अनेक विद्यार्थियों ने विभिन्न प्रतियोगिताओं में सक्रिय रूप से भाग लिया। प्रतियोगिताओं में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले प्रतिभागियों को प्रतिकुलपति जी द्वारा प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान के अनुसार सम्मानित किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा अर्जित उपलब्धियों के क्रम में विगत दिनों जिला स्तरीय युवा महोत्सव में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए लोकगीत एवं लोकनृत्य, दोनों श्रेणियों में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

इससे पूर्व उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय में आयोजित प्रखंड स्तरीय युवा महोत्सव में भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने उल्लेखनीय सफलता अर्जित की थी। इस प्रतियोगिता में विद्यार्थियों ने लोकगीत एवं लोकनृत्य में प्रथम स्थान तथा कविता लेखन में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इन उपलब्धियों के उपरांत विद्यार्थियों ने प्रतिकुलपति जी से आशीर्वाद प्राप्त किया।

हाल ही में उत्तराखंड रजत जयंती के पावन अवसर पर आयोजित स्केचिंग प्रतियोगिता में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के एनीमेशन विभाग के छात्र ने उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। प्रतियोगिता में श्रेष्ठ प्रदर्शन के उपरांत विद्यार्थी ने प्रतिकुलपति जी से भेंट कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। प्रतिकुलपति जी ने छात्र के उत्साह और प्रतिभा की सराहना करते हुए उसके उज्ज्वल भविष्य के लिए शुभकामनाएँ प्रदान कीं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में, जहाँ शिक्षा एवं संस्कार का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है, वहीं विद्यार्थियों को राष्ट्र की संस्कृति एवं सभ्यता से सतत परिचित कराने हेतु प्रेरित भी किया जाता है। इसी क्रम में विश्वविद्यालय के योग विभाग के छात्रों ने खेलो इंडिया योगासन प्रतियोगिता में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए कांस्य पदक अर्जित किया और विश्वविद्यालय का गौरव बढ़ाया।

प्रतियोगिता में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त करने के उपरांत सभी विद्यार्थियों ने प्रतिकुलपति

महोदय से भेंट कर आशीर्वाद प्राप्त किया। प्रतिकुलपति जी ने विजेताओं को उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएँ प्रदान करते हुए कहा कि ऐसे अवसर विद्यार्थियों में न केवल आत्मविश्वास बढ़ाते हैं, बल्कि उन्हें नई ऊँचाइयों को छूने के लिए प्रेरित भी करते हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के संगीत-वाद्य अध्ययन केंद्र के प्रतिभावान विद्यार्थियों ने आगरा में आयोजित अखिल भारतीय संगीत प्रतियोगिता में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए विश्वविद्यालय का गौरव बढ़ाया है। प्रतियोगिता से विजयी होकर लौटने पर सभी विद्यार्थियों ने विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंट की। सभी विजेताओं को हार्दिक बधाई देते हुए प्रतिकुलपति जी ने कहा कि छात्रों की यह उपलब्धि उनकी साधना, समर्पण और गुरुजनों के मार्गदर्शन का प्रत्यक्ष परिणाम है।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में स्पेनिश भाषा कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूर्ण हुआ। इस अवधि में विभिन्न संकायों एवं कक्षाओं के विद्यार्थियों ने अपने-अपने स्तर सफलतापूर्वक उत्तीर्ण किए। कार्यक्रम का संचालन इक्वाडोर की सुश्री मर्सेडीज एनरिकेज़ तथा चिली की सुश्री बिएत्रिस डेम्यूर द्वारा किया गया, जो दक्षिण अमेरिका की प्रतिष्ठित भाषा विशेषज्ञ हैं। दोनों शिक्षिकाओं ने विद्यार्थियों को रोचक, संवादात्मक एवं गहन भाषिक अनुभव प्रदान किया।

ज्ञात हो कि स्पेनिश भाषा, जो अँगरेजी के बाद विश्व में दूसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है, छात्रों के लिए वैश्विक संचार और कौशल विकास के नए अवसर लेकर आई है। यह पहल विश्वविद्यालय की समग्र एवं अंतरराष्ट्रीय शिक्षा की दृष्टि के अनुरूप है।

प्रमाणपत्र वितरण समारोह की शोभा बढ़ाते हुए विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने विद्यार्थियों को उनकी उपलब्धि पर बधाई दी और कहा कि भाषाई एवं सांस्कृतिक विविधता का अध्ययन वैश्विक समझ को गहराई प्रदान करता है। □

---

**एक पर्वत के शिखर पर एक देवालय था। उस तक पहुँचने के लिए, एक पगडंडी ही एकमात्र सहारा थी। देवालय ने एक दिन पगडंडी से प्रश्न किया—"बहन! तुम लोगों का इतना भार-बोझ अपने ऊपर क्यों वहन करती हो? उनके जूतों को भी अपने ऊपर धारण करती हो, ऐसा क्यों? उन्हें मना क्यों नहीं कर देतीं?"**

**पगडंडी बोली—"बहन! ये सारे लोग आपके भीतर बैठे भगवान से मिलने ही तो आ रहे हैं। उनके बहाने मेरी भी भगवान से हर घड़ी मुलाकात हो जाती है। इससे बड़ा सौभाग्य भला और क्या हो सकता है?"**

**दूसरों का कष्ट सहन करके भी प्रभु-भक्ति को जीवंत रखने वाले सदा महान कहे जाते हैं।**

---

# पात्रता का विकास (पूर्वार्द्ध)

**परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह मौलिकता है कि ये व्यक्ति के अंतर्मन को झकझोरते भी हैं और साथ ही साधकों-याजकों-शिष्यों को एक उत्कृष्ट पथ का पथिक बनने के लिए प्रेरित भी करते हैं। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्बोधन में परमवंदनीया माताजी सभी श्रोताओं को अध्यात्म का मूल आधार- पात्रता अपनाने हेतु संकल्पित कराती हैं। वे सभी को स्मरण दिलाती हैं कि पात्रता का विकास जिसके भीतर होता है, वही भगवान के अनुग्रह का अधिकारी बन पाता है, क्योंकि भगवान मात्र भावों के भूखे हैं। वंदनीया माताजी सभी साधकों को यह समझाती हैं कि अनुष्ठान का मूल आधार मनोमलिनता को नष्ट करना एवं स्वयं के भीतर की बुराइयों को निष्कासित करना है। इसी को दूसरे शब्दों में पात्रता भी कह सकते हैं। परमवंदनीया माताजी मीरा, रैदास एवं भगीरथ के उदाहरण भी इसी हेतु प्रस्तुत करती हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को..........।**

## पात्रता का विकास

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ

**ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥**

हमारे आत्मीय परिजनो! दो घड़े रखे थे। एक घड़े का मुँह ऊपर की तरफ था और एक घड़े का मुँह नीचे की ओर था।

बारिश हुई तो जिस घड़े का मुँह ऊपर की तरफ था, वह भरता हुआ चला गया और जिसका मुँह नीचे की ओर था उसमें से पानी ढलता हुआ चला गया। जिसका मुँह नीचे की ओर था, वह बारिश को कोस रहा था और जो घड़ा भरा हुआ था, उससे ईर्ष्या और डाह करने लगा कि इसके अंदर पानी कैसे आ गया और मेरे अंदर क्यों नहीं आया।

बारिश बोली कि हे भले आदमी! कम-से-कम तुझे तो अपना मुँह सीधा करना था, पर तू तो अपना मुँह औंधा करके पड़ा था और हमको गाली दे रहा है। उस दूसरे घड़े को गाली दे रहा है; लेकिन अपने आप को नहीं दे रहा कि हमने मुँह सीधा क्यों नहीं किया? अपनी पात्रता को विकसित क्यों नहीं किया?

आपने अपने बारे में क्यों नहीं सोचा, दूसरों के बारे में सोचते रहे; लेकिन अपने बारे में यह नहीं सोचा कि हम किस ओर जा रहे हैं। किधर को हमारी दिशाधारा है, उस दिशाधारा को न सोच करके हम किधर ही चलने लगते हैं। यह दोष किसका है? यह अपना दोष है।

उसमें बारिश का दोष नहीं था, बारिश तो समान थी। वह तो पात्रता का है कि पात्र कितना बड़ा है और कैसा है? उतना ही उसके अंदर आता हुआ चला जाता है।

## श्रद्धा एवं पात्रता

यह कहानी किसके ऊपर है? यह कहानी आप सबके ऊपर है, हमारे ऊपर है, आपके ऊपर है कि जितना हम चाहें तो हम श्रेष्ठ बन सकते हैं और निकृष्ट-से-निकृष्ट बन सकते हैं। अर्जुन क्यों उठते हुए चले गए? क्या कारण था कि वे उठते हुए चले गए और दुर्योधन उठता हुआ क्यों नहीं चला गया, जबकि दोनों एक ही गुरु के शिष्य थे। फिर एक के साथ ऐसा पक्षपात क्यों और एक के साथ ऐसा दुराव क्यों?

गुरु तो पक्षपाती नहीं होता है; लेकिन शिष्य के अंदर वे भावनाएँ, वे आस्थाएँ हैं कि वह चाहे तो उठता हुआ चला जाता है। शिवाजी उठते हुए चले गए, एकलव्य उठता हुआ चला गया तो कैसे चला गया? आखिर उनकी श्रद्धा और उनकी भावनाएँ उनको ऊपर उठाती हुई चली गईं।

बेटे! भगवान का अनुदान और वरदान है तो सही और वह सभी के लिए समान है, परंतु अनुदान और वरदान को सँभालने के लिए भी तो कोई पात्रता चाहिए कि नहीं चाहिए। पात्रता चाहिए। यदि आपकी पात्रता विकसित हो गई है, तब वह आपको समान रूप से मिलता हुआ चला जाएगा, जैसे कि अनेक भक्तों को मिलता हुआ चला गया।

## भाव के भूखे हैं भगवान

भगवान शबरी के यहाँ जाते रहे और विदुर के यहाँ जाते रहे। उन्होंने शबरी के जूठे बेर खाए और विदुर के यहाँ जाकर के केले के छिलके खाए। भगवान भूखे हैं तो सिर्फ भावनाओं के और श्रद्धा के भूखे हैं।

भगवान को और कुछ नहीं चाहिए, भगवान को आपकी श्रद्धा चाहिए, गायत्री माता को आपकी निष्ठा और श्रद्धा चाहिए। सुदामा निर्धन थे; लेकिन भगवान तो निर्धन नहीं थे। भगवान के तो अपार भंडार भरे हुए हैं; लेकिन भगवान ने उनकी पात्रता को विकसित किया और पात्रता देखी कि इसके अंदर पात्रता है कि नहीं है। जब सुदामा जी उनके यहाँ द्वारका में पहुँचे तो उन्होंने एक ही शब्द कहा कि तुम्हारे पास क्या है, लाओ दो। भगवान सबके यहाँ जाते हैं और माँगते हुए चले जाते हैं।

उनकी क्षुद्रता और उनकी निकृष्टता को वह त्यागते हुए चले जाते हैं और कहते हैं कि अपना दीजिए। सुदामा के पास थोड़े से चावल थे, जो उनकी पत्नी ने दिए थे और वे उन चावलों को बगल में दबाते हुए चले गए। उनका इतना विराट वैभव देखकर उन्होंने सोचा कि मित्र को मैं चावल दूँ तो कैसे दूँ।

मेरी पत्नी ने तो यह कहा था कि तुम्हारे बालपन के सखा हैं, तुम इन चावलों को उनको भेंट में देना; पर वह नहीं दे पा रहे थे। कृष्ण इस बात को ताड़ गए कि इनके पास है; पर संकीर्णता

---

**महाभारत की कथा में यक्ष-युधिष्ठिर के मध्य संवाद सर्वविदित है। यक्ष के प्रश्नों का सफलतापूर्वक उत्तर दे देने के उपरांत यक्ष ने युधिष्ठिर से किसी एक भाई के जीवित हो जाने का वर माँगने को कहा। उत्तर में युधिष्ठिर ने नकुल का जीवन माँगा; क्योंकि नकुल-सहदेव, माद्री के पुत्र थे। वे चाहते थे कि दोनों माताओं के एक-एक पुत्र जीवित रहें। उनकी धर्मभावना से प्रसन्न होकर यक्ष ने युधिष्ठिर के सभी भाइयों को जीवित कर दिया।**

---

से भरा हुआ जो इनका मन है या तो वह नहीं दे पा रहा है या यह संकोचवश नहीं दे पा रहे हैं, तो उन्होंने कहा कि लाओ सुदामा जी क्या लाए हैं? हमारी भाभी ने क्या भेजा है?

उन्होंने कहा कि मेरे पास कुछ नहीं है, तो तुम्हारे पास यह क्या है? और तब सुदामा ने कहा कि ये चावल हैं। कहते हैं कि उन्होंने तीन मुट्ठी भर करके चावल खाए और फिर उनकी पत्नी ने उनका हाथ पकड़ लिया। उन्होंने कहा कि तीन मुट्ठी खाकर के तो आप सारा-का-सारा दिए जा रहे हो, चौथी को खाकर के तो आप क्या करेंगे। आप तीन मुट्ठी खाइए, तीनों लोकों के विजेता हैं आप, बस इससे ज्यादा मत खाइए और कहते हैं कि सुदामा का क्या-से-क्या होता हुआ चला गया।

सुदामा के बारे में यह कहानी संभव है आलंकारिक हो, पर इसके सिद्धांत बिलकुल सही हैं। सिद्धांतों में कमी नहीं है। अगर सिद्धांतों में कमी होती तो फिर नरसी मेहता के लिए भी हम झूठा कहते, मीरा को भी हम झूठा कह सकते थे कि जिसने नारी-जागरण के लिए सारा जीवन लगा दिया था।

आपको मालूम है कि मीरा राज-पाट छोड़ करके दर-दर भटकती फिरी, घर-घर जाती रही और महिलाओं के जनजागरण के लिए उसने कदम उठाया। मीरा ने अपनी सुविधाओं को त्याग दिया। बेटे! सुविधाओं को त्यागना पड़ता है, बुराइयों को त्यागना पड़ता है और अच्छाइयों को लेना पड़ता है। आप नौ दिन के अनुष्ठान के लिए आए हैं।

**क्या है अनुष्ठान?**

अनुष्ठान क्या है? अनुष्ठान माने संकल्प होता है और संकल्प वह होता है जिसे हम दृढ़ता के साथ पूरा करते हुए चले जाते हैं। यदि संकल्प को हम पूरा नहीं कर पाए और कहीं भटक गए, हमारा दिमाग कहीं चला गया, जप कर रहे हैं और दिमाग जाने कहाँ-कहाँ जा रहा है? जाने कहाँ का मारा कहाँ जा रहा है, घर-गृहस्थी में घूम रहा है, कारोबार में जा रहा है, जाने किधर को जा रहा है तो फिर आप जप क्या कर रहे हैं? आप अनुष्ठान क्या कर रहे हैं? आप तो मखौल कर रहे हैं। आप मखौल मत कीजिए। क्या करें?

आप एक अबोध बच्चे का रूप धारण कीजिए, अपने मन में यह विचार कीजिए कि हम एक अबोध बच्चे हैं, छोटे बच्चे हैं और हम माँ की गोद में खेल रहे हैं। माँ की गोद में हैं अथवा यह भी कल्पना कर सकते हैं, यह भी भावना कर सकते हैं जैसे कि गुरुजी के अमृत वचन में कहा गया है।

आपने सुना होगा कि आप यह मानकर चलिए कि हम शांतिकुंज में हैं। शांतिकुंज माने—माताजी का पेट, इस गर्भ में हम पल रहे हैं। जब गर्भ में शिशु रहता है तो जो माता देती है, उसी को खाता है, उसी से पलता है। इन नौ दिनों के लिए आप बिलकुल अपनी मनोकामना से रहित होकर उपासना कीजिए, फिर देखिए कि आपको कितना आनंद आता है।

आपको बहुत आनंद आएगा और आपको उससे शांति मिलती हुई चली जाएगी। इसलिए शांति मिलती हुई चली जाएगी कि आप खाली हो गए ना, जब तक आप खाली नहीं होंगे, तब तक आपको कुछ नहीं मिलेगा। बाँस जब तक खाली नहीं होता है, तब तक किस तरीके से उसकी बाँसुरी बन सकती है, कैसे उसमें वंशलोचन पैदा हो सकता है? स्वाति नक्षत्र की बूँद हर जगह गिरती है; लेकिन कहीं सफलता नहीं मिलती।

**पात्रता और सफलता**

जहाँ कहीं भी पात्र खाली होता है, वहीं सफलता मिलती है। सीप औंधी पड़ी होगी, तो

बताइए मोती कैसे पैदा होगा? सीप का मुँह खुला होगा, ऊपर की ओर होगा तो ही तो उसमें से मोती पैदा होगा। वंशलोचन तभी पैदा होगा, जब बाँस अंदर से खोखला होगा। स्वाति की बूँदें गाय के कान में पड़ेंगी, तभी तो गोरोचन पैदा होगा। इस तरीके से पहले भक्तों को अपना हृदय खाली करना पड़ता है।

मनोमलिनता खाली करनी पड़ती है और जो अपनी जीवात्मा पर पड़े हुए मल और विक्षेप हैं, वह समाप्त करने पड़ते हैं। यदि वह समाप्त नहीं किए गए हैं तो अंगारे की भाँति हो जाएगा। अंगारे पर राख की परत पड़ी होती है, जो होती तो सफेद है, पर उस परत को जब तक हटाया नहीं जाएगा, तब तक वह दबा रहेगा। उसे छूते हुए गरमी नहीं आएगी; लेकिन जब हम उस परत को हटा देते हैं तो उसमें से वह धधकता हुआ अंगारा सामने आता है और गरमी देता है।

लकड़ी इधर-उधर पड़ी रहती है और उन्हीं लकड़ियों को जब हम अग्नि में डाल देते हैं तो अग्नि का स्वरूप हो जाता है। इसी तरीके से भक्त का है। भक्त जब भगवान से जुड़ जाता है तो उसका स्वरूप उसमें आने लगता है। वे अच्छाइयाँ भगवान में जो विद्यमान हैं, वे भगवान की अच्छाइयाँ भक्तों में आती हुई चली जाती हैं।

इसकी एक ही पहचान है कि इनके अंदर बुराइयों का निष्कासन हुआ अथवा नहीं हुआ। इनकी बुराइयों का निष्कासन नहीं हुआ है और अच्छाइयों को इन्होंने नहीं लिया है, तब तक इनको भक्त कैसे मान लिया जाए। तब तक वह भक्त नहीं माना जा सकता है। वह भक्त तभी होगा, जब अनुकरण करेगा। ये शिक्षाएँ हैं, ये भगवान के अनुदान और वरदान हैं, जो समय-समय पर भक्त को मिलते रहे हैं।

## मेरे तो गिरिधर गोपाल

मीरा को मिला? हाँ! मीरा को मिला, मीरा ने कहा—"**मेरो तो गिरिधर गोपाल दूसरो ना कोई।**" मेरा तो गिरिधर गोपाल है, दूसरा कोई इस संसार में नहीं है। जब तक ये भावनाएँ नहीं होती हैं, तब तक उसको मिलेगा नहीं। आप गुरुजी से जुड़े जरूर हैं; लेकिन यदि अंतःकरण से जिस दिन जुड़ जाएँगे तो आपके अंदर गुरुजी के अंदर की वे सारी-की-सारी जो विशेषताएँ हैं, वे विशेषताएँ आपके अंदर आती हुई चली जाएँगी।

**ऋषियों में विमर्श चल रहा था। प्रश्न उभरा कि ईश्वर का सही स्वरूप क्या है? उत्तर भी विमर्श के उपरांत ऋषिगणों से ही निकला— ईश्वर का सही स्वरूप है— अंतःकरण में श्रेष्ठता के प्रति अनुराग विकसित होना तथा उसका आत्मीयता के रूप में बहिरंग में व्यक्त होकर चारों ओर फैल जाना।**

कच्चे मन से जुड़ना अलग होता है और पक्के मन से जुड़ना बिलकुल अलग होता है। पक्के मन से यह होता है कि जो कुछ है, सो तेरा है—"तेरा तुझको सौंपता क्या लागे है मेरा।" तेरा तुझको सौंप रहा हूँ, जो कुछ भी मेरा है, वह सब तेरा है। जहाँ सब तेरे की बात आ जाएगी, वहीं भगवान भी यह कहेगा कि बेटा जो कुछ मेरा है, वह सब तेरा है।

फिर सूरदास के तरीके से लकड़ी लेकर के भगवान आगे-पीछे चलेगा, फिर भगीरथ के तरीके से आपको वरदान मिलेगा।

भगीरथ को वरदान मिला और माँ गंगा को लाने में वे सफल हो गए। कौन-सी गंगा? पतितपावनी गंगा, जो पापों को हरने वाली है, वह अनवरत बहती हुई चली जाती है। बेटे! आप इसका शिक्षण कब ले पाए? गंगा नहाने तो गए, ऊपर का मैल तो उतारा; लेकिन भीतर की जो पवित्रता थी, उसको हम ग्रहण नहीं कर पाए। जब तक हम भीतर की पवित्रता को ग्रहण नहीं करेंगे, तो फिर हम निर्मल कैसे हो गए, फिर हम पवित्र कहाँ हुए। फिर हम अपवित्र ही रहे; क्योंकि हमने अंदर की बुराइयों को और मलिनताओं को छोड़ा नहीं।

**मन चंगा तो कठौती में गंगा**

यदि हम मलिनताओं को छोड़ देते तो इस गंगा के तरीके से निर्मल और स्वच्छ हो जाते, गतिशील हो जाते। तो जिस तरह से सारे समाज को, सारे राष्ट्र को वह नहलाती हुई चली जाती है, घर-घर के मैल उतारती हुई चली जाती है, इस तरीके से यदि भावनाएँ आई होतीं तो हमें सच्चे रूप में गंगा नहाना आ जाता और फिर गंगा आपके अंदर में प्रवेश कर जाती, जिस तरीके से रैदास के अंदर प्रवेश कर गई थी।

कहते हैं कि रैदास ने फूल भेजे थे और उन्होंने यह कहा था कि यह फूल माँ गंगा के हाथ में देना। कहते हैं कि माँ गंगा ने अंजलि के तरीके से दोनों हाथ फैला दिए और वह फूल दोनों हाथ में आ गए। पता नहीं आ गए कि नहीं आ गए, पर यह सही हो सकता है। उनका एक और उदाहरण है कि **"मन चंगा तो कठौती में गंगा"**। जो उनका कार्य था, वह अपने फर्ज और कर्त्तव्य को निभाते हुए चले गए।

उन्होंने कहा कि यह भगवान का कार्य है, यह माँ गंगा का कार्य है और जो कार्य मैं कर रहा हूँ, इसको छोड़ करके मेरा जाना ठीक नहीं है। माँ से कह देना कि तुम्हारा पुत्र बहुत व्यस्त है, इसलिए वह नहीं आया है।

कहते हैं कि किसी का एक कंगन खो गया था तो उन्होंने रैदास को चैलेंज किया कि तुम भगवान के भक्त हो तो बताओ कि हमारा जो कंगन खो गया है, वह कहाँ से आएगा? उनके ऊपर यह व्यंग्य था।

भगवान की कुछ देन थी, गंगा माँ की करुणा थी तो कहते हैं उन्होंने कठौती में से निकालकर एक कंगन उनको दे दिया। पता नहीं यह तो चामत्कारिक बातें हैं, मैं कैसे इनको अपने मुँह से कहूँ—शोभा नहीं देता। नहीं है तो चमत्कार हो जाएगा, पर यह चमत्कार नहीं, बल्कि भक्तों की जो विशेषता थी, जो उनको अनुदान और वरदान के रूप में मिला था, सो उन्होंने दे दिया। इसी तरीके से एक उदाहरण और है।

एक संत थे और किसी एक कन्या का विवाह था तो एक व्यक्ति संत के पास आया और उसने कहा कि हमारी बेटी की शादी है तो आपके यहाँ कुछ हो तो हमें कुछ दे दीजिए। उन्होंने सारा घर देखा, कुछ नहीं था, पत्नी सो रही थी, उसके दोनों हाथों के कंगन थे, तो उन्होंने चुपके से एक कंगन उतार करके उस अतिथि को दे दिया और कहा कि जा भाई और तो कुछ नहीं है मेरे पास, यह कंगन है, इस कंगन को तू ले जा, दूसरा नहीं उतार पाया।

इतने में उनकी पत्नी की आँख खुल गई और मुस्कराते हुए पत्नी ने कहा कि ऐसे अच्छे कार्य के लिए आप यदि दे रहे हैं तो यह दूसरा कंगन आप ले लीजिए, दूसरा भी कंगन ले जाइए।

**[क्रमशः अगले अंक में समापन]**

**►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◄**

# नैतिकता का आत्मानुशासन

नैतिकता का आत्मानुशासन बदले हुए युग का बदलाव बनेगा। सभी में नैतिकता के उद्देश्य व महत्त्व की समझ व स्वीकार्यता पनपेगी। अभी की स्थिति में नैतिकता नियम बनकर रह गई है। इसे बोझ की तरह जिस किसी तरह ढोया और अपनाया जाता है। सभी के द्वारा यह ढोई और अपनाई जाए अबकी दशा में यह भी जरूरी नहीं है। तभी मर्यादाओं को बुरी तरह से मसला और रौंदा हुआ देखा जा सकता है। वर्जनाओं के बाँध भी बुरी तरह से टूटकर नष्ट हो रहे हैं। मनमानी–मनमर्जियाँ और खुदगर्जी जैसे जीवन की नीति बनती जा रही है। इसी में खुशियाँ तलाशी जा रही हैं। जीवन में सुख के स्रोत ढूँढ़े जा रहे हैं। अपना छोड़कर अपनों की परवाह भी बाकी नहीं बची है। इस दशा में जीवन के फँस–उलझ जाने के कारण अब अपना सुख और अपनी सुरक्षा भी क्षीण होने लगी है।

सम्मान–सुख–सुरक्षा पर सबका स्वामित्व हो, इसके लिए नैतिकता की समझ जरूरी है। सभी साथ–साथ रह सकें, खुशियों पर सबका साझा अधिकार हो; इसके लिए नैतिकता को अपनाया जाना आवश्यक है। जीवन स्वस्थ, सकुशल और दीर्घायु हो, इसके लिए नैतिकता की स्वीकार्यता जरूरी है। यही संस्कृति–सभ्यता का आधार है। वन्य जीवन का सभ्य जीवन में परिवर्तन इसके बिना किसी तरह से संभव नहीं है। यही मनुष्य में मनुष्यता की कसौटी, परख और पहचान है।

जीवन के इस सत्य को जितनी जल्दी जान लिया जाए, उतना ही अच्छा है। अधिक और अधिक पाने के लोभ में, सारे सुख–सभी सुविधाएँ सिर्फ मेरे लिए, इस सोच के स्वार्थ ने; सारे सम्मान पर सिर्फ मेरा आधिपत्य और अधिकार है, इस अहंता के अभिमान ने—नैतिकता के मूल्य और मानकों की अवहेलना की है। इसी कारण नैतिकता की जीवन–नीति भुलाई–बिसराई गई है। इसी के परिणाम जीवन में दु:खों का दरद बनकर उभरे हैं।

जब जहाँ जीवन को समझने की कोशिश होगी, तब वहाँ अपने आप ही नैतिकता को समझा और अपनाया जाएगा। यदि इस समझ का आरंभ से प्रारंभ करें, तो जीवन के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है—जीवन–ऊर्जा, जीवनी–शक्ति। इसके बिना जीवन का टिक पाना संभव ही नहीं है और इस जीवन–ऊर्जा, जीवनी–शक्ति का स्रोत है—प्रकृति। प्रकृति के साथ साहचर्य एवं इसे पोषण देने से स्वयं को पोषण मिल पाना संभव है। हम सभी का सामूहिक जीवन केवल तभी तक संभव है, जब तक हम प्रकृति को पोषित करने की नीति और नैतिकता पर भरोसा करते हैं। प्रकृति के स्वस्थ और सौंदर्यशाली होने में ही हमारे स्वास्थ्य व सौंदर्य का रहस्य है। नैतिकता के इस प्रथम पाठ को जब से भुलाया गया है, तब से प्रकृति कुपित होकर विपदाओं के विनाश की सृष्टि कर रही है।

प्रकृति के पश्चात जीवन को धारण करने वाली धरती है। प्रकृति यदि समस्त सृष्टि की माता है, तो धरती हम सबकी सगी माता है। धरती के बिना हम सबको कौन धारण करेगा? धरती के जीवन में हम सबका जीवन है, जबकि धरती के मरण में हम सबकी सामूहिक मृत्यु निश्चित है। इस सच को झुठलाया नहीं जा सकता। बात धरती

के भूतल की हो अथवा भूगर्भ की, धरा के इन दोनों आयामों को समझकर इनके साथ साझेदारी निभाना नैतिकता का दूसरा पाठ है। भूतल के नदी-पर्वत, झरने-जंगल, वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी और मनुष्य, सभी को साथ-साथ रहना है। धरती की मिट्टी से, भूतल की भूमि की उर्वरता के बल पर ही फसलें और फल संभव हैं। इसके भूगर्भ का जल, खनिज, धातुएँ भी तभी मिल पाना संभव है; जब हम धरती के महत्त्व व महिमा को समझें।

जब हम सब धरती के पुत्र व पुत्रियाँ बनेंगे, तभी तो धरती हमारी माता बनेगी। उसका वात्सल्य हमें मिल पाएगा। नैतिकता का यह दूसरा पाठ हमें यही सिखाता है। इसकी अवहेलना-उपेक्षा के परिणाम तो बस हमें जलरहित बंजर भूमि, खनिज-धातुएँ देने के स्थान पर आपदाएँ-विपदाएँ देने वाला भूगर्भ बस यही बचेगा। जो वर्तमान की अवस्था है, इसमें सकारात्मक व सार्थक परिवर्तन के लिए धरती के साथ सहजीवन की नैतिकता की स्थापना अनिवार्य है।

नैतिकता का तीसरा पाठ कहता है—जो हमारी आवश्यकताएँ हैं, वे ही सबकी हैं। जो हमारे लिए अनिवार्य है, वही सबके लिए है। जिस तरह श्वास के लिए वायु, जीवन के लिए जल, शरीर के लिए भोजन हमारे लिए जरूरी है; वैसे ही यह जरूरत औरों की भी है। इसलिए इन्हें छीनकर-हड़पकर पाना ठीक नहीं है। इनका उपयोग मिल-बाँटकर ही किया जाना चाहिए।

हम यदि औरों की जरूरतों को छीनेंगे, तो एक दिन दूसरे हमारा सब कुछ छीन-झपटकर ले जाएँगे। इसलिए इस छीना-झपटी की प्रकृति को बदलकर, सभी के साथ जीवन की जरूरतें साझा करना ही उचित है। नैतिकता का यह पाठ हमें यही सिखाता है। सबके साथ मिलकर रहने के लिए जीवन की जरूरतों पर सभी के समान अधिकार को भी स्वीकारना पड़ेगा, क्योंकि जैविक जरूरतें सभी के जीवन के लिए अनिवार्य हैं। इसीलिए नैतिकता की यह सीख, इन्हें स्वेच्छा से सबके साथ साझा करने की जरूरत सिखाती है।

हम सब मनुष्यों का जीवन केवल जैविक नहीं है, इसका बहुत कुछ अंश मानसिक है। मन के कारण ही हम मनुष्य कहलाते हैं। तन की सार-सँभाल के साथ मन की सार-सँभाल भी जरूरी है। क्योंकि यदि मनुष्य ने मन को नहीं सँभाला; तो मनुष्य पशु से कहीं अधिक बदतर, बर्बर, हिंसक और हत्यारा बन जाएगा। इस स्थिति में सबसे विचित्र विडंबना यह होगी कि इनकी पहचान भी नहीं हो पाएगी। पशु वनों में रहते हैं और मनुष्य बस्तियों में। इनकी आपस में सहज दूरी बनती है और निभती भी है। यदि कहीं धोखे से कोई भूला-भटका पशु वन से बस्ती में आ गया, तो हम उसे

---

**सम्मान-सुख-सुरक्षा पर सबका स्वामित्व हो, इसके लिए नैतिकता की समझ जरूरी है। सभी साथ-साथ रह सकें, खुशियों पर सबका साझा अधिकार हो; इसके लिए नैतिकता को अपनाया जाना आवश्यक है। जीवन स्वस्थ, सकुशल और दीर्घायु हो, इसके लिए नैतिकता की स्वीकार्यता जरूरी है। यही संस्कृति-सभ्यता का आधार है। वन्य जीवन का सभ्य जीवन में परिवर्तन इसके बिना किसी तरह से संभव नहीं है। यही मनुष्य में मनुष्यता की कसौटी, परख और पहचान है। जीवन के इस सत्य को जितनी जल्दी जान लिया जाए, उतना ही अच्छा है।**

---

फिर से बस्ती से वन की ओर खदेड़ देते हैं। हाथी, तेंदुआ, बाघ आदि के साथ जब-तब ऐसा होता रहता है, लेकिन यदि मनुष्यों में कोई एक अथवा अनेक पशु बन गए, तो हम क्या करेंगे? उसकी तो सही से परख व पहचान भी नहीं हो पाएगी। बदली हुई प्रकृति में भी उसकी आकृति तो वही रहेगी। ऐसी स्थिति में वह चीते से ज्यादा चालाक और बाघ-शेर से ज्यादा खतरनाक हो जाएगा। उसे तो बस्ती से वन की ओर भी नहीं खदेड़ा जा सकता। ऐसी दशा में उपाय केवल एक ही है कि मनुष्य, मनुष्य ही बना रहे। वह वन्य पशु में परिवर्तित न हो।

इसके लिए मनुष्य को मनुष्य की मानसिक आवश्यकताओं को समझना होगा। नैतिकता का अगला और चौथा पाठ यही है। सम्मान, सुरक्षा, सुख-सुविधा और कुशलता पर सभी का समान अधिकार है। सभी को इसे मिलना चाहिए। मनुष्यों के समाज में यदि सब सभी मनुष्यों को प्राप्त नहीं है, तो इसका सीधा मतलब यही है कि वहाँ पर मनुष्यों की आकृति में कुछ वन्य पशु भी रहने लगे हैं; जिन्हें हम भले ही वनों की ओर न खदेड़ पाएँ, लेकिन उन्हें फिर से वापस मनुष्य बनने के लिए प्रेरित या विवश तो कर ही सकते हैं।

नैतिकता का आग्रह यही है कि हम मनुष्य हैं और मनुष्य ही बनकर रहें और यह तभी संभव है, जब हमारा मन समझदार बने। उसमें यह समझ विकसित हो कि सम्मान, सुख-सुविधा और कुशलता पर सभी का अधिकार है। फिर वह बालक हो या वृद्ध। युवक हो अथवा अधेड़। स्त्री हो या पुरुष। धनवान हो या निर्धन। समर्थ-सबल हो या असमर्थ-दुर्बल। उसका जाति, धर्म, कुल, वंश, क्षेत्र, देश की लकीरें किसी भी तरह के कितने ही विभाजन क्यों न कर लें; लेकिन इससे मनुष्य की मनुष्यता तो विभाज़ित नहीं होती।

मनुष्य में मनुष्यता की समान प्रतिष्ठा नैतिकता का सर्वोच्च उद्देश्य है। जहाँ सभी मनुष्य सम्मानित, सुरक्षित, सुखी जीवन की अनिवार्य सुविधाओं से युक्त कुशलता का अनुभव करें—समझना चाहिए कि वहाँ नैतिकता अपनाई जा रही है। संस्कृति, सभ्यता सभी इसी के नाम हैं। इसी के परिचय और पर्याय हैं।

जीवन के लिए जो जहर है, उसे हर तरह से त्याग देना; जो अमृत है, उसे अपना लेना—नैतिकता का पाँचवाँ नियम है। इसे स्वीकारने पर नशा करना अथवा अन्य कोई गलत आदतें टिक न सकेंगी। मंदिरों में जाने वाले मनुष्य जब मदिरालय में भीड़ बढ़ाने लगें, तो यही समझना चाहिए कि नैतिकता की समझ सो रही है, खो रही है।

नैतिकता कभी शासन के नियमों से नहीं निभती। यह सही समझ और आत्मानुशासन से निभाई जाती है। नैतिकता के पाँच पाठ—(1) प्रकृति के साथ साहचर्य, (2) धरती के साथ सुखद संबंध, (3) जैविक जरूरतों की समान साझेदारी, (4) मानसिक कुशलता का समान अधिकार एवं (5) जीवन, जीवन-ऊर्जा, जीवनी-शक्ति को नष्ट करने वाली समस्त वस्तुओं व आदतों का त्याग करके उसे अपनाना जो जीवन, जीवन-ऊर्जा व जीवनी-शक्ति के लिए अमृत है— मानव जीवन के पंचप्राणों की तरह है।

इनमें से किसी की उपेक्षा, अवहेलना संभव नहीं है। भावी युग का आधार भी यही है। दैवी प्रकाश से देदीप्यमान मानव मन इन्हें अपनाने और स्वीकारने में तनिक-सी भी देर नहीं लगाएगा। इसी के बल पर मानव जीवन के दिवस और रात्रि, सभी भयमुक्त होंगे। इसी के आधार पर सभी का सम्मान, सुरक्षा, सुख-सुविधा और कुशलता—मानव के मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकारी जाएगी। इसी के बलबूते आध्यात्मिकता का आत्मस्वरूप प्रकट होगा। ❑

अपनों से अपनी बात

# नवरात्र पर्व और गायत्री-साधना

वर्ष में दो बार आने वाला नवरात्र पर्व साधना और आत्मिक शुद्धि का विशेष अवसर माना गया है। शारदीय और वसंत नवरात्र, दोनों ही काल तप-तपस्या और उपासना के लिए श्रेष्ठ माने जाते हैं। इन दिनों शरीर और मन दोनों को शुद्ध, संयमित व संतुलित करने का प्रयास होता है।

ऋतुओं के संक्रमणकाल में मनुष्य के शरीर और मन पर विशेष प्रभाव पड़ता है, जिससे उन्हें संयमित और सशक्त बनाए रखने की आवश्यकता होती है। नवरात्र का काल इसलिए भी महत्त्वपूर्ण होता है; क्योंकि इसमें विशेष तप-पूजन और गायत्री साधना से आत्मिक प्रगति के द्वार खुलते हैं। शास्त्रों में इसे शक्ति-साधना का उपयुक्त समय कहा गया है। ऋषियों ने भी इन दिनों को आत्मोत्थान, आराधना और साधना के लिए सर्वोत्तम बताया है।

वर्तमान युग की परिस्थितियों को देखते हुए, जीवन में शुद्धता, सात्त्विकता और सादगी की आवश्यकता है। नवरात्र के नौ दिन यदि हम विशेष अनुशासन, संयम, ब्रह्मचर्य, उपवास या हलका सात्त्विक भोजन, मौन, नियमबद्ध दिनचर्या व नियमित जप-अनुष्ठान में बिताएँ तो उनका प्रभाव पूरे वर्षभर के जीवन पर पड़ता है।

उससे शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की वृद्धि होती है। वातावरण में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है और नकारात्मक प्रवृत्तियाँ समाप्त होने लगती हैं। इन दिनों विशेष रूप से स्वाध्याय, ध्यान, उपासना, जप, यज्ञ, सेवा, संयम और तप का समावेश होना चाहिए। नवरात्र पर्व केवल एक परंपरा मात्र नहीं, अपितु आत्मिक शुद्धि और उन्नयन का विज्ञान है।

नवरात्र के दोनों पक्षों में एक अद्भुत संयोग होता है—एक ओर ऋतुओं का संक्रमणकाल और दूसरी ओर वातावरण में विशेष ऊर्जा का संचार। इसी कारण ये काल आत्मिक जागरण और साधना के लिए अति उपयुक्त माने जाते हैं।

इन दिनों में शरीर और मन की शुद्धि के लिए विशेष उपक्रम किए जाते हैं। संयम, मौन, ब्रह्मचर्य, प्रातःकालीन जागरण, उपवास आदि के माध्यम से जीवन में दिव्यता का समावेश किया जाता है। ऋषियों ने नवरात्र को शक्ति-उपासना का पर्व कहा है। शरीर, मन, बुद्धि, चित्त और आत्मा की गहराई से शुद्धि के लिए यह उत्तम समय है।

इन नौ दिनों में नवदुर्गा के नौ स्वरूपों की उपासना, विशेष मंत्र-जप, यज्ञ और आत्मचिंतन का अभ्यास जीवन में संतुलन और स्पष्टता लाता है। नवरात्र केवल देवी की पूजा मात्र नहीं, बल्कि आत्मशक्ति के जागरण का महा अभियान है। इन दिनों में हर किसी को अपनी साधनाशैली के अनुरूप संयमित दिनचर्या अपनानी चाहिए।

स्वाध्याय करें, सत्संग में भाग लें, गायत्री उपासना करें, हवन करें या आध्यात्मिक आयोजन करें। गायत्री-उपासना, ध्यान, योगाभ्यास, सेवा और मौन जैसे प्रयोग नवरात्र को सार्थक बनाते हैं। गायत्री की आराधना केवल जप तक सीमित नहीं है, यह ध्यान, सेवा, संयम और ब्रह्मचर्य से जुड़ी एक संपूर्ण जीवनशैली है। वास्तव में नवरात्र का पर्व केवल पर्व न रहकर एक साधना पर्व बन जाए

तो न केवल व्यक्ति का आत्मिक विकास होता है, बल्कि समाज में भी सकारात्मक परिवर्तन आता है।

मंदिरों और शक्तिपीठों में इन दिनों विशेष अनुष्ठानों का आयोजन होता है, लेकिन घरों में भी यदि श्रद्धा और नियम से उपासना की जाए तो वह भी उतनी ही प्रभावशाली होती है।

इन दिनों व्रत-उपवास केवल शारीरिक संयम नहीं, बल्कि मानसिक शुद्धि का साधन बन जाएँ—यही नवरात्र का सच्चा उद्देश्य है। नवरात्र के दिनों में साधकों को चाहिए कि वे अपने कार्य, व्यवहार और जीवनशैली में संयम और सात्त्विकता का विशेष ध्यान रखें।

आहार, विचार, व्यवहार और भावनाएँ सब कुछ ऊर्जावान और आत्मिक उन्नयन की दिशा में होने चाहिए। गायत्री-साधना का मूल उद्देश्य केवल जप या पूजा नहीं, बल्कि अपने जीवन को तपस्वी, संयमी और आदर्श बनाने की साधना है। इन दिनों अनेक साधक त्रिकाल संध्या, गायत्री मंत्र जप, प्राणायाम, स्वाध्याय, यज्ञ और उपासना जैसे विधानों का पालन करते हैं।

साथ-ही-साथ, अपने अंतर्मन में छिपी हुई कमजोरियों को पहचानने और उन्हें दूर करने का प्रयास भी करते हैं। यही आत्ममंथन, आत्मपरिष्कार और आत्मबोध का वास्तविक रूप है। ऋषियों ने कहा है—"अंधकार को कोसने से अच्छा है, एक दीपक जलाया जाए।"

नवरात्र का यही संदेश है—अपने भीतर के अज्ञान, आलस्य, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, मोह जैसे दोषों को मिटाकर आत्मप्रकाश फैलाना। नवरात्र-साधना में विशेष रूप से ध्यान, मौन, नियमितता, नियम पालन और ब्रह्मचर्य का समावेश करना चाहिए। इससे न केवल आत्मबल बढ़ता है, बल्कि तन, मन और वातावरण भी शुद्ध और दिव्य हो जाते हैं। इन दिनों साधकों को अपने तन और मन को जितना हो सके, तपस्वी बनाना चाहिए।

आत्मकल्याण की भावना के साथ जब साधना होती है तो वह न केवल साधक को लाभ देती है, बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र तक उसकी ऊर्जा का प्रभाव फैलता है। गायत्री मंत्र का त्रिकाल जप, उपवास, फलाहार, मौन, स्वाध्याय, यज्ञ एवं ध्यान इन दिनों विशेष रूप से लाभकारी माने जाते हैं।

अनेक साधक एक समय सात्त्विक भोजन लेकर शेष समय जल और फल पर रहते हैं। शुद्धता और सादगी ही नवरात्र की पहचान बन जाती है। साधक चाहें तो इस समय में गीता, उपनिषद्, गायत्री महाविज्ञान आदि सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करें और जीवन की दिशा को ईश्वर की ओर मोड़ें।

यह नवनिर्माण का पर्व है—एक नए जीवन, नई सोच और नए संकल्प का। साधना को केवल परंपरा या कर्मकांड न मानकर उसे आत्मिक विकास का साधन बनाना ही सच्ची नवरात्र-साधना है। गायत्री-उपासना न केवल व्यक्ति के अंतर्मन को शुद्ध करती है, बल्कि सामाजिक और पारिवारिक जीवन में भी शांति और सौहार्द का वातावरण निर्मित करती है।

यह एक ऐसी साधना है, जो आध्यात्मिकता के साथ-साथ दैनिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष को भी सुंदर बनाती है। गायत्री को शक्ति की मूर्तिमान अभिव्यक्ति माना गया है। जैसे सूर्य प्रकाश देता है, वैसे ही गायत्री अंत:करण को प्रकाशित करती है।

शरीर, मन और बुद्धि के समग्र कल्याण के लिए यह एक अति प्रभावी साधन है। इसकी

नियमित साधना से व्यक्ति के विचार, भावनाएँ और दृष्टिकोण में अत्यंत सकारात्मक परिवर्तन आने लगता है। गायत्री मंत्र का जप करते समय केवल उच्चारण ही नहीं, बल्कि उसके अर्थ और भाव को समझकर आंतरिक श्रद्धा से किया गया जप अधिक प्रभावशाली होता है। इसमें '**ॐ**' से प्रारंभ होकर '**प्रचोदयात्**' तक पहुँचते हुए साधक स्वयं को आलोकित अनुभव करता है।

नवरात्र काल में गायत्री-उपासना करते समय यह आवश्यक है कि हम मन, वचन और कर्म से पूर्ण संयम बरतें। विचारों में शुद्धता, आहार में सात्त्विकता और व्यवहार में विनम्रता आवश्यक है। इस तरह की साधना से ही भीतर का अंधकार मिटता है और आत्मज्योति प्रज्वलित होती है।

शास्त्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है—**सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।** यह वाणी का संयम सिखाने वाला सिद्धांत है। इसी प्रकार आचरण में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अस्तेय जैसे मूल्यों को अपनाना ही सच्चे साधक की पहचान है।

नवरात्र की साधना को केवल कर्मकांड या दिखावे का माध्यम न बनाएँ, बल्कि इसे आत्मिक रूपांतरण का यथार्थ अवसर मानें। यही वह समय है जब हम अपने जीवन की गति, दिशा और लक्ष्य की पुनर्समीक्षा कर सकते हैं। यदि हम इन नौ दिनों को एक सच्चे आत्मप्रशिक्षण के रूप में लें, तो न केवल हमारा अंत:करण निर्मल होगा, बल्कि हमारे संकल्प दृढ़, विचार उच्च और कार्य प्रभावी बन सकेंगे।

यही है नवरात्र का मूल संदेश—अंधकार से प्रकाश की ओर; असत्य से सत्य की ओर; मृत्यु से अमृत्व की ओर साधक का गमन। □

---

**देवर्षि नारद को जिज्ञासा हुई कि देव व असुर दोनों ही परमपिता परमात्मा की संतान हैं, फिर देवों को असुरों से श्रेष्ठ मानने का क्या कारण है? प्रजापति ब्रह्मा ने नारद की जिज्ञासा के समाधान के लिए दोनों को भोजन पर बुलाया। प्रथम बार ऐसा आयोजन हुआ था तो दानव उत्साह में पहले ही पहुँच गए। उन्होंने कहा कि हमें ही पहले भोजन परोस दिया जाए। दानवों के भोजन प्रारंभ करने से पूर्व प्रजापति ने उनके सम्मुख शर्त रखी कि सभी को भोजन बिना कोहनी मोड़े करना है। शर्त विचित्र थी, पर तब भी असुरों ने दावत ग्रहण करना आरंभ किया, पर बिना कोहनी मोड़े भोजन करना कैसे संभव था?**

**दानवों ने अनेकों प्रयत्न किए, परंतु उन्हें भूखे पेट ही उठना पड़ा। कुछ समय पश्चात देवगण पहुँचे। यही शर्त उनके सामने रखी गई तो देवताओं ने युक्ति लगाई और समाधान खोजा। समाधान यह निकाला कि प्रत्येक देवगण बिना कोहनी मोड़े अपने पड़ोस में बैठे देवता के मुख में निवाला डाल दें। पारस्परिक सहयोग-सहकार से सब संतुष्ट होकर उठे। शर्त विचित्र थी, पर उनके लिए वरदान बन गई। देवर्षि नारद को देवगणों को मिलती प्राथमिकता का कारण पता चल गया।**

---

# होली आई रे

होली आई होली आई रे, मन में उमंग लाई रे।
अब न राग-द्वेष रहे, बस सद्भाव शेष रहे,
जीने का ढंग लाई रे। मन में उमंग लाई रे।

हृदय में अनास्था की होलिका जलानी है।
प्रह्लाद-सी भक्ति-भावना बढ़ानी है॥
मन में उल्लास रहे, नवयुग की आस रहे,
ऊर्जा-अंग-अंग लाई रे। मन में उमंग लाई रे।

हिरण्यकशिपु-सी दुष्प्रवृत्ति का संहार हो।
नृसिंह प्रभु की सत्प्रवृत्ति का प्रचार हो॥
सज्जनों का संग रहे, दुष्ट देख दंग रहे,
गुरुभक्ति रंग लाई रे। मन में उमंग लाई रे।

मन में न क्रूरता की कलुष-कालिमा रहे।
परमार्थ भाव की शेष लालिमा रहे॥
गायत्री जाप करें, तन-मन के ताप हरें,
हृदय में तरंग छाई रे। मन में उमंग लाई रे।

दिव्य शांतिकुंज से ज्ञानगंग चल पड़ी।
भावना समर्पण की शिष्यों में उछल पड़ी॥
आओ समयदान करें, और अंशदान करें,
आत्मभाव संग लाई रे। मन में उमंग लाई रे।

— चक्रेश पाण्डेय

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

# युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
## पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
## के
## समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

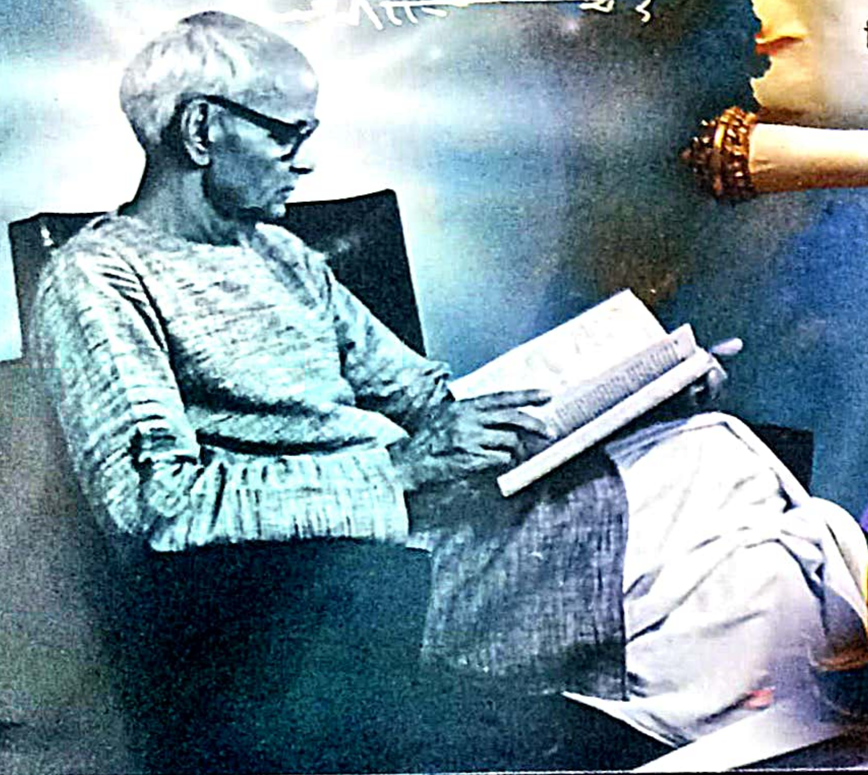

### खंड – 15
### सावित्री, कुंडलिनी एवं तंत्र

सावित्री, कुंडलिनी तथा तंत्र– तीनों ही अभी तक जनसाधारण के लिए गुह्य विषय बने हुए थे । इनके संबंध में बहुत कुछ अभी तक अज्ञात रहा है । इस गुह्य विज्ञान के परिचय के लिए आप पढ़ना चाहेंगे–

- गायत्री और सावित्री की एकता और पृथकता ।
- सावित्री और सविता का संबंध ।
- आध्यात्मिक कामविज्ञान ।
- कुंडलिनी के षट्चक्र और उनका वेधन । सावित्री विज्ञान और तंत्र-साधना ।
- भौतिक विज्ञान की दृष्टि से तंत्र विज्ञान ।

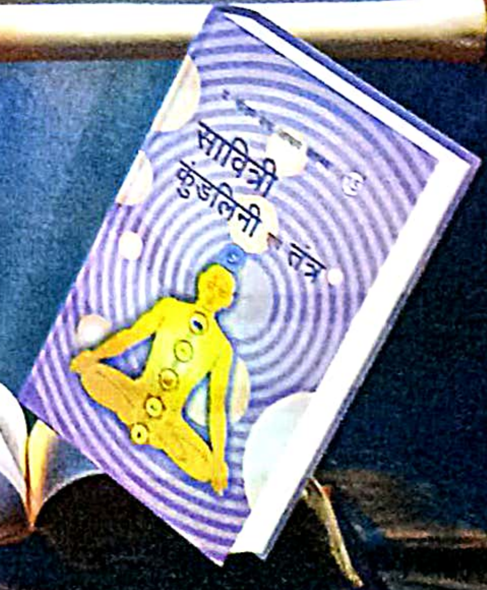

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01 / 02 / 2026
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

हरिद्वार के बैरागी द्वीप स्थित शताब्दी समारोहस्थल पर आज संचार क्रांति के एक नए युग का सूत्रपात हुआ। यहाँ अत्याधुनिक तकनीकी सुविधाओं से सुसज्जित इलेक्ट्रॉनिक मीडिया विभाग का भव्य अनावरण गढ़वाल कमिश्नर श्री विनय शंकर पाण्डे,आई जी गढ़वाल श्री राजीव स्वरूप, देव संस्कृति विवि के प्रतिकुलपति डॉ. चिन्मय पण्ड्या द्वारा किया गया।

शांतिकुंज द्वारा बैरागी कैंप में 20 जनवरी से 24 जनवरी की मध्य में आयोजित कार्यक्रमों की सफलता के लिए जिलाधिकारी ने संबंधित अधिकारियों के साथ की बैठक

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक–मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ.प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565–2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ई-मेल–akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org